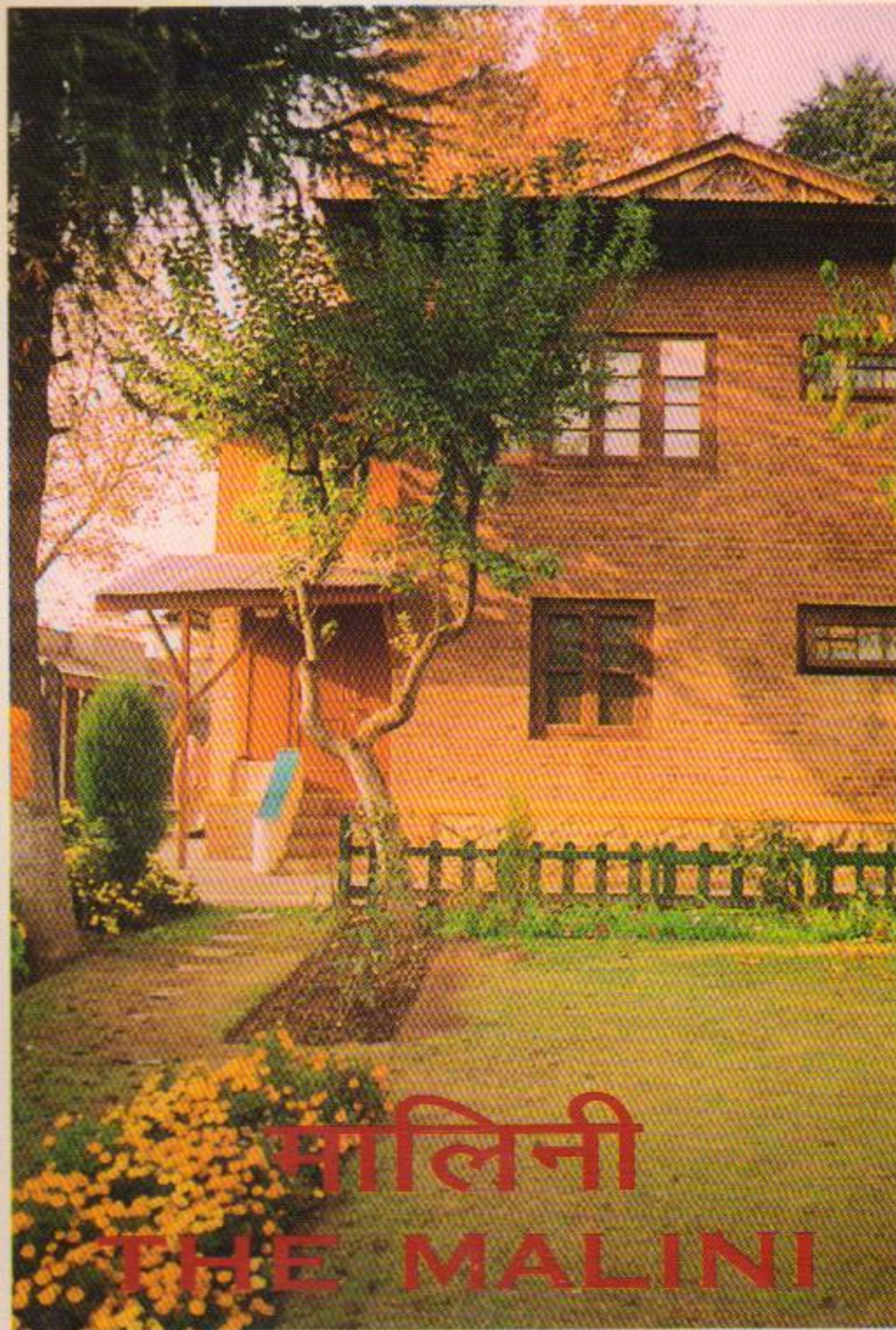


JULY 15, 1996



मालिनी  
THE MALINI

**ISHWAR ASHRAM TRUST**

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR





# मालिनी

## THE MALINI

*Abhinavagupta about Mālinī*

यन्मयतयेदमखिलं, परमोपादेयभावमभ्येति।  
भवभेदास्त्रं शास्त्रं, जयति श्रीमालिनी देवी॥

*Śrī Mālinī Devī is ever victorious. In union  
with her all the treatises of non-dualistic  
order achieve the nature of divine potency.*

*T.A.A. XXXVII*

**ISHWAR ASHRAM TRUST**  
ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

**Board of Trustees :**

Sri Inder Krishan Raina  
(Secretary/Trustee)

Sri Samvit Prakash Dhar  
Sri Brij Nath Kaul  
Sri Mohan Krishan Wattal

**Editorial Board :**

Sushri Prabha Devi  
Prof. Nilakanth Gurtoo  
Pandit Janki Nath Kaul 'Kamal'  
Prof. Makhan Lal Kukiloo  
Sri Som Nath Saproo

Sri Vijay Kumar Kaul  
(Co-ordinator)

**Publishers :**

Ishwar Ashram Trust  
Ishber (Nishat), Srinagar  
Kashmir.

**Administrative Office :**

2-Mohinder Nagar  
Canal Road  
Jammu Tawi - 180002.  
Tel. : 555755

**Branch Office :**

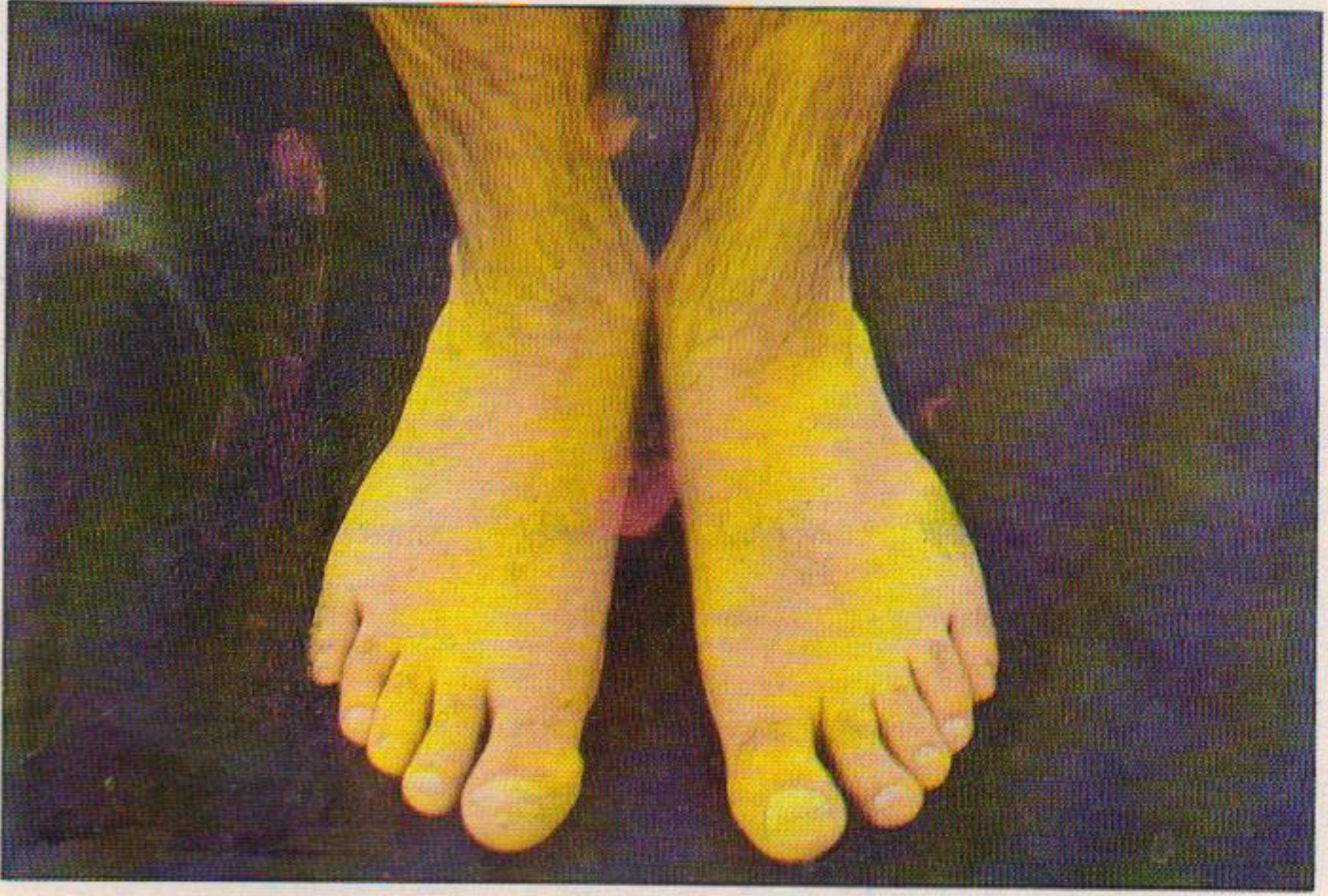
Sh. N. K. Raina  
A/48, Sector 39, Noida  
Tel. : 8573258

15th July, 1996  
Price : Rs. 15.00

© Ishwar Ashram Trust

Produced on behalf of Ishwar Ashram Trust  
by Paramount Printographics, Daryaganj, New Delhi-2





विलीने शंकाभ्रे हृदयगगनोद्भासिमहसः  
प्रभोः सूर्यस्येव स्पृशत चरणान्ध्वान्तजयिनः॥

(Vilīne Śaṅkābhre hṛdayagaganodbhāsimahasah  
Prabhoḥ sūryasyeva sprśata caṇāndhvāntajayinaḥ)



ॐ नमः चिद्वपुषे

## विषय सूची : Contents

(i) मालिनी दूसरे वर्ष में		4
1. Kuṇḍalinī Vijñāna Rahasyam	Sh. Svāmī Lakṣmaṇ Joo	6
2. Śrī Kālikā Stotram of Śivānandanātha	Sh. Svāmī Lakṣmaṇ Joo	12
3. Kashmir Śaivism	Dr. B. N. Pandit	24
4. अभिलाष हिन्दी रूपान्तर सहित	Devi Shri Sharika	28
5. शिवसूत्र समीक्षा	Dr. B. N. Pandit	30
6. Abhinavagupta Solves the Riddle		40

### **MALINI - Quarterly Magazine**

*Annual Subscription : Rs. 60.00*

*Price Per Copy : Rs. 15.00*

*Overseas Subscription : US\$ 20.00*

*All correspondence & subscription  
must be sent to Administrative Office :*

2-Mohinder Nagar

Canal Road

Jammu Tawi - 180002.



## मालिनी दूसरे वर्ष में

यह हार्दिक प्रसन्नता का विषय है कि मालिनी ने दूसरे वर्ष में अपने शुभचरण रखे। सद्गुरु महाराज के प्रिय शिष्यों व भक्तों के प्यारदुलार ने इसकी शारीरिक पुष्टि में जितना हाथ बढ़ाया उसका प्रत्यक्ष प्रमाण मालिनी का रचना विन्यास है। नवजात के लिए प्रथम वर्ष का समय देहसौष्ठव और घुटनों के बल सरकने के लिए स्मरणीय होता है इस अभिप्राय से मालिनी ने जितने भी डग छोड़े संभल के छोड़े और अपने अस्तित्व की अमिट छाप भक्तों और दर्शन प्रेमियों के मानस पटल पर छोड़ी। दूसरे वर्ष में मालिनी विविध पुष्पों के रंगों की महक को लेकर जिस प्रकार सुरभिप्रेमियों को अधिक मोहित कर सकेगी उसके लिए भरसक प्रयत्न किया जायेगा। पर हमारा यह प्रयास आपकी लगन और मालिनी के विस्तार पर ही निर्भर है। हमें आशा है कि इस वर्ष मालिनी उन छोरों पर भी लहराती नजर आयेगी जो अभी तक अनछुए रहे हैं। मालिनी हमारे आदरणीय सद्गुरु महाराज की वह शंखध्वनि है जो प्रत्येक विवेकी के अन्तस्तल में गूंजनी चाहिए। सद्गुरु महाराज के हम प्रिय शिष्य व भक्त इस उद्देश्य को संपूर्ण करने में इस वर्ष कहां तक सफल होंगे वह तो हमारी रचनात्मक रणनीति पर निर्भर होगा।

इस अंक की यह विशेषता है कि इसमें सद्गुरु महाराज की दिव्यवाणी में प्रस्फुटित कालिकास्तोत्र की व्याख्या दी जा रही है। यह अनुवाद सरल और बुद्धिगम्य है। विरला ही सद्गुरु महाराज का कोई शिष्य व भक्त होगा जो कालिकास्तोत्र के नाम से परिचित न हो। सद्गुरु महाराज ने अनेक बार इस का रसास्वादन, अपनी मधुर और नाना प्रकार के शब्द जाल से विचित्रित कश्मीरी भाषा में, अपने शिष्यों को कराया था पर इसका अंग्रेजी भाषा में रूपान्तरण स्वामी जी महाराज के एक सत् शिष्य स्वर्गीय श्री रामचन्द्र रैणा (सेवानिवृत्त राजस्व आयुक्त कश्मीर राज्य) के स्वात्मीयों के सौजन्य से हमें प्राप्त हुआ जिसके लिए हम उनके परम आभारी हैं। यह कब और कहां सद्गुरु महाराज ने अपने भक्तों को अंग्रेजी भाषा में समझाया था इस विषय में पूरी जानकारी न होते हुए भी ईश्वर आश्रम ट्रस्ट के अधिकारी इस लोकोपकार के लिए धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने इस स्तोत्र के प्रकाशन को प्राथमिकता दी। सद्गुरु महाराज के अन्य पूज्य शिष्यों के पास यदि ऐसी ही किसी प्रकार की सामग्री होगी तो वे भी अवश्य ही ईश्वर आश्रम ट्रस्ट के अधिकारियों को उसे समर्पित कर जनता को लाभान्वित करेंगे, ऐसी हमारी पूरी आशा है।



तृतीय अंक में हमने सद्गुरु महाराज का सूत्रात्मक शैली में अनूदित शिवसूत्र का मात्र सूत्रों का अंग्रेजी रूपान्तर प्रस्तुत किया था, जो सभी भक्त जनों ने सराहा। अब इन सूत्रों का हिन्दी अनुवाद पुस्तक की समीक्षात्मक प्रस्तावना के पश्चात् मालिनी के आगामी अंकों में क्रमशः प्रस्तुत किया जायेगा। इन सूत्रों के अनुवादक व समीक्षक महामहिम डा० बलजिन्नाथ पण्डित हैं। शैव-सम्प्रदाय तथा साहित्यिक जगत से सम्बन्धित विरला ही कोई मनीषी होगा जो विद्वद्वर के नाम से परिचित न हो। डा० पण्डित कश्मीर शैवदर्शन के विश्वभर के इने गिने विद्वानों में से एक हैं। डा० पण्डित हमारे सद्गुरु महाराज के विशेष सत्कार के पात्र थे। इन्होंने अपनी अप्रतिम प्रतिभा से और गुरु महाराज की अनुग्रहात्मिका शक्ति से शैवदर्शन महारथी का अद्वितीय पद सारे भारत में प्राप्त किया। इन्होंने अंग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं में शैवदर्शन सम्बन्धी सारगर्भित पुस्तकें लिखी जिनमें इस दर्शन की बारीकियों मुख्य सिद्धान्तों और इसके क्रमिक विकास को बुद्धिगम्य शैली में समझाकर जनमानस को आन्दोलित किया। मालिनी के प्रति इन के विशेष राग के लिए हम उनके आभारी हैं और आशा करते हैं कि इनके लालनपालन से मालिनी का भविष्य उज्ज्वल होता जायेगा।

विगत अंक में देवी श्रीशारिका जी की वैराग्यपूर्ण कश्मीरी रचना को पढ़कर सारे भक्तजन अचम्भे में पड़ गये हैं कि क्या देवी जी कविता के क्षेत्र को भी लांघ चुकी थी? इसी आशय से प्रस्तुत अंक में भी उनकी एक और कश्मीरी रचना को प्रस्तुत किया जा रहा है जिस की अगाधाशय तरंगों पर ऊपर ही ऊपर सैर करने पर भी हम आनन्दित हो सकते हैं।

“सारी धर्मनीतियां जिस सद्गुरु दीक्षा पर अवलंबित हैं उस प्रकाश से प्रकाशित कर्ममार्ग पर सदा समाहित हो हम चलें,” इस गुरुपूर्णिमा पर जीवन की उद्देश्य सिद्धि के लिए हमारा यही दृढसंकल्प हो।

हमें आशा है कि सामान्य पाठक समुदाय दूसरे वर्ष के प्रारम्भिक अंक से अंग्रेजी भाषा में लिखे संपादकीय के स्थान पर हिन्दी भाषा में लिखे संपादकीय को सराहेंगे क्योंकि यह उनकी ही चिर-अभिलाषा थी।

ईश्वर आश्रम ट्रस्ट सारे शिष्यों और भक्तजनों की हार्दिक सहानुभूति और आर्थिक अनुदान के लिए आभारी है।

**जय गुरुदेव**

गुरुपूर्णिमा (जुलाई १९९६)



# कुण्डलिनीविज्ञानरहस्यम्॥

## Kuṇḍalinīvijñāna Rahasyam

Īśvara Svarūp Svāmī Lakṣmaṇ Joo Mahārāj

*Continued from last issue*

शक्तिकुण्डलिन्याः स्वरूपं तन्त्रसद्भावे यथा

(Śaktikuṇḍalinyāḥ svarūpam tantrasadbhāve yathā)

तन्त्रसद्भावे (Tantrasadbhāve) in the tantrasadbhāva, स्वरूपं ((Svarūpam) the nature of, शक्ति कुण्डलिन्याः (Śaktikuṇḍalinyāḥ) Śakti-Kuṇḍalinī is described as under :-

या सा शक्तिः परा सूक्ष्मा निराचारेति कीर्तिता।

हृद्विन्दुं वेष्टयित्वान्तः सुषुप्तभुजगाकृतिः॥

तत्र सुप्ता महाभागे न किञ्चिन्मन्यते उमे।

चन्द्राग्नि रवि नक्षत्रैर्भुवनानि चतुर्दश।

क्षिप्तोदरे तु या देवी विषमूढेव सा गता॥

(Yā sā śaktiḥ parā sūkṣmā nirācāreti kīrtitā  
Hṛdbindum veṣṭayitvāntaḥ suṣuptabhujagākṛtiḥ,  
Tatra suptā mahābhāge na kiñcinmanyate ume,  
Candrāgni ravi nkṣtrair bhuvanāni caturdaśa,  
Kṣiptodare tu yā devī viṣamūḍheva sā gatā)

या सा शक्तिः (Yā sā śakti) that Supreme and Subtle Energy, is निराचारा (nirācārā) above the boundary of caste, हृद्विन्दुं वेष्टयित्वान्तः Hṛdbindum veṣṭayitvāntaḥ) it resides in each and every human being irrespective of caste, creed and colour. The बिन्दु bindu which is the real heart, resides in each and every centre of six cakaras right from मूलाधार (Mūlādhāra) to सहस्रार (Sahasrāra). The centre of the mūlādhāra cakra is the heart, the centre of the navel (नाभि) cakra is the heart, the centre of हृद् (hṛd) heart cakra is the heart, the centre of कण्ठ (Kaṇṭha) throat cakra is the heart, the centre of the भ्रूमध्य (bhrūmadhya) the centre of eyebrows cakra is the heart and the centre of the सहस्रार (Sahasrāra) one thousand petale cakra is the



heart, that Supreme Energy protects that point of heart in her own nature, and सुषुप्तभुजगाकृति (Suṣuṣṭabhujagākṛtiḥ) she takes, the formation of that serpent which is just sleeping.

उमे महाभागे (ume mahābhāge) O! Parvati तत्र सुप्ता (tatra suptā) there she rests in deep sleep.

न किञ्चिन्मन्यते (Na kiñcinmanyate) she does not understand anything except her own nature. Although she takes चन्द्र (Candra) the moon, अग्नि (Agni) fire, रवि (Ravi) Sun नक्षत्रैः (Nakṣtraiḥ) all the stars, भुवनानि चतुर्दश (bhuvanāni caturdaśa) all the fourteen worlds, क्षितोदरे (kṣiptodare) and makes them rest in her own body, या देवी (yā devī) that goddess appears just as if विषमूढेव सा गता (viṣamūḍhev sā gatā) she has lost her consciousness by some heavy dosage of poison.

सैव शक्ति कुण्डलिनी भगवती श्री तन्त्रालोके (Saiva Śakti Kuṇḍalinī bhagavatī śritantrāloke) in the tantrāloka that Śakti Kuṇḍalinī is described as follows:—

कला सप्तदशी तस्मादमृताकाररूपिणी

(Kalā sapṭadaśī tasmādamṛtākāra rūpiṇī)

That seventeenth kalā is filled with the embodiment of supreme nectar which has nothing to do with objective world, cognitive world and subjective world. सप्तदशी कला (Sapṭadaśī Kalā) seventeenth Kalā is that phase of the moon that is ever present even during the dark phase. It refers to the flowing out of the universal nectar of God consciousness.

इत्यारभ्य (Ityārabhya) starting from this to प्रकाश्य सर्ववस्तूनां विसर्ग रहिता तु सा शक्तिकुण्डलिका (Prakāśya sarvavastūnām visarga rahitā tu sā, śakti kuṇḍalikā) she gives light and consciousness to everybody but she does not produce anything. That is Śakti Kuṇḍalikā —Kuṇḍalinī.

इत्यन्तं निरूपितास्ति (ityantam nirūpitāsti) upto this śaloka it is explained there in Tantrāloka.

परापराशक्त्यपर पर्यायायाः विसर्गशक्ते-  
रियं बीजात्मिका मध्यमा दशा भवति।



*(Parāparā Śaktyaparaparyāyāḥ visarga śakte  
riyam bījātmikā madhyamā daśā bhavati)*

परापरा शक्ति (Parāparā Śakti) the medium energy of lord Śiva is also known as विसर्गशक्ति (Visarga Śakti) the creative energy.

बीजात्मिका मध्यमा दशा भवति (bījātmikā madhyamā daśā bhavati) This is the seed of all other energies because from there they flow forth. The Supreme state of visarga Śakti is पराकुण्डलिनी (Parā Kuṇḍalinī). परापराशक्ति (Parāparā Śakti) the second energy is medium energy. अपरा शक्ति (Aparā-Śakti) the third energy is inferior energy. It is known as प्राणकुण्डलिनी (Prāṇa Kuṇḍalinī).

अस्या विसर्गशक्तेराद्यन्तदशयोर्वर्णनं प्राणकुण्डलिनी  
पराकुण्डलिनी निरूपणावसरे भविष्यति।

*(Asyāḥ Visarga Śakterādyanta daśayor varṇanam Prāṇ Kuṇḍalinī  
Parā Kuṇḍalinī nirūpaṇāvasare bhaviṣyati)*

विसर्गशक्तेराद्यन्तदशयोर्वर्णनं (visarga śakterādyanta daśayor varṇanam) — This visarga śakti (creative energy) will be explained, from its आद्यन्तदशयोः (ādyanta daśayoh) first दशा (Daśā) which is the Supreme state i.e. पराकुण्डलिनी (Parā Kuṇḍalinī) to the last state i.e. प्राणकुण्डलिनी (Prāṇa Kuṇḍalinī), at the time of defining these two states i.e. Prāṇa Kuṇḍalinī and Parā Kuṇḍalinī. कामकलापरामर्शानुसारेण (Kāma Kalā parāmarśānusāreṇ) - Kāma-kalā means the unification of the two aspects of any sensation. Kāma (काम) does not mean only sex. It means when your eyes are united with form, it also exists when the ear is united with sound, the nose united with smell, the skin united with touch or some flower, or some softness - that is कामकला। Thus कौलयोगी अपि (Koula yogī api) the aspirant of the koula system also चर्याक्रमे (caryā-krame) meditates on these unifications in their various manifestations and तां शक्ति कुण्डलिनीं (tām śaktikuṇḍalinīm) - that Śakti Kuṇḍalinī, साक्षात्करोति (sākṣātkaroti) he experiences ; this is called caryā-krama, which is succession (krama) in the activity (caryā) of the senses. सिद्धयोगिनी सङ्घट्टात्मक समावेशावसरे (Siddha yoginī Saṅghattātmaka samāveśāvasare) सिद्ध (Siddha) means male adept योगिनी (yoginī) means female aspirant or siddha is "I" Consciousness and yoginī refers to



whatever activity limited with it. The customary meaning of Siddha-yoginī is the unification of two people. But the समावेश (Samāveśa) absorption of Siddha-yoginī can also take place at the conjunction, the unification of any two perceptions or Siddha can be the ear (not physical ear but the energy of hearing) and yoginī the sound. For meditation in caryā-krama the sensation of the knowledge of this cognition is utilized. कामतत्त्वरूपतया (Kāmatattvarūpatayā) This is known as the reality of Kāma-tattva.

यदाहुराचार्याभिनवगुप्तपादाः

(Yadāhurācāryābhinavaguptapādāḥ)

Ācārya Abhinavagupta has also clarified this in his Tantrāloka.

अतएव विसर्गोऽयमव्यक्तहकलात्मकः

कामतत्त्वमिति श्रीमत्कुलगुह्वर उच्यते।

कामस्य पूर्णता तत्त्वं सङ्घट्टे प्रविभाव्यते (तन्त्रालोक-३-१४६)

(Ataeva visargoayamavyaktahakalātmakah)

kāmatattvamiti śrīmatkulaguhvaraucyate

kāmasya pūrṇatā tattvam saṅghatte Pravibhāvyate)

In the श्रीमत्कुलगुह्वर (Śrīmatkulaguhvara) Tantra उच्यते (ucyate) - it is said that the विसर्गोऽयं (visargoayam) - the energy of creation is found in the contact of two - may be joy, may be satisfaction, but something is created. अव्यक्त हकलात्मकः (avyaktahakalātmakah) - This creative energy is the letter ह (ha) this letter is a half letter and is not produced fully. This partly produced “ह” (ha) is known as the कामतत्त्वं (Kāmatattvam) the reality of willful desire. कामस्य पूर्णता तत्त्वं सङ्घट्टे प्रविभाव्यते (kāmasya pūrṇatā tattvam saṅghatte pravibhavyate) kāma (willful desire) gets its fullness only when it is united. When it is united that is actual position of kāma.

श्री वातूलनाथाचार्येणापि (Śrī Vātūlanāthācāryenāpi) Ācārya Vātūlanātha also prescribes in his Sūtras - सिद्धयोगिनी सङ्घटान्महामेलापोदयः (siddha yogini saṅghattātmahā melāpodayh) महामेलापोदयः (mahāmelāpodayh) Supreme unification takes place, सङ्घटात् (saṅghattāt) by the contact of siddhas and yoginis. Siddhas refer to I-Consciousness and yoginis refer to whatever



objectivity united with it. So this verse does not only refer physical sexual contact but all sensual contacts.

इत्यस्मिन् सूत्रे (ityasmin sūtre) in this Sūtra of Vātūlanātha, महामेलापशब्देन (mahāmelāpa śabdena) by the word of festival of supreme conjunction. सेयं शक्ति कुण्डलिनी निरूपिता (seyam śakti kuṇḍalinī nirūpitā) that Śakti Kuṇḍalinī is defined where the supreme meeting of Śiva and Śakti takes place.

यस्यां क्षणमात्रमपि स्थितिं प्राप्य कौलयोगी

(Yasyām kṣaṇamātramapi sthitim prāpya koulayogī)

In that koulayogi experiences this state only for one second.

वेद्य वेदकात्म शिवशक्त्यात्मद्वयविगलनेन

तां शिवशक्त्यात्म महासामरस्य रूपां स्थितिमनुभवति

(Vedya vedakātma Śiva Śaktyātma dvaya vigalanena tām Śiva Śaktyātma mahā sāmarasya rūpām sthitimanubhavati)

Then he experiences and achieves the conjunction of Śiva and Śakti. It is that state where Śiva and Śakti cannot be distinguished from each other. The individuality of Śiva and Śakti is lost. Śiva and Śakti are everywhere. It is just like mixing of two pots of milk. Once united these two pots of milk cannot be separated. Thus in this state, differentiatedness of these two Śiva and Śakti, gets disappeared.

इत्यस्यां सिद्धयोगिनीसङ्घट्टात्म महामेलापदशायां शक्तिकुण्डलिनी दशामनुभवन्

यः कौलयोगी चर्याक्रममाचरति, स एव चर्याक्रमेऽधिकृतोऽस्ति, नान्य इत्यवधातव्यम्।

(Itasyām siddha yoginī saṅghaṭṭātma mahāmelāpadaśāyām śakti kuṇḍalinī daśāmanubhavana yah koulayogi caryākramamācarti sa eva caryā krameadhik rtoasti nānya ityavdhātavyama)

इत्यस्यां महामेलापदशायां (Itasyām mahāmelāpadaśāyām) In that state of the great festival of union, सिद्धयोगिनी सङ्घट्टात्म (Siddha yoginī saṅghaṭṭātma) - which takes place by the contact of siddhas and yoginīs, यः कौलयोगी शक्ति कुण्डलिनी दशामनुभवन् (Yah koulayogi Śakti kuṇḍalinī daśām anubhavana) - the koula yogī perceives the state of Śakti Kuṇḍalinī, चर्या क्रममाचरति (caryākramamācarti) - and can do whatever he likes afterwards. There is



no sin for him in any action. स एव चर्याक्रमेऽधिकृतोऽस्ति (sa eva caryākrameadhi kṛtoasti) He alone is fit for caryā krama i.e. the practice of entering into the supreme through sensual contact filled with knowledge. नान्य इत्यवधातव्यम् (nānyaḥ ityavadhātavyam) none else, this must be understood clearly. तस्मात् परिपूर्णस्वात्मावमर्शनिष्ठानां (tasmāta paripūrṇa svātmāvamarśa niṣṭhānām). Therefore those yogīs, who are established in the awareness (विमर्श) of their nature as Śiva, पूर्णाशयानां एव (Pūrṇā śayānām eva) who have ocean like broad or skylike limitless hearts, अस्मिन्निरुत्तरसमावेशास्पदे (asminnirūttara samāveśāspade) and who are seated in that state which is above all, चर्याक्रमेऽधिकारो नेतरेषाम् (caryā krameadhikāro netareṣām) are authorised to follow the path of caryā krama, others will commit a blunder and will go to hell.

**यदाहुः श्री क्षेमराजपादाः**

(Yadāhuḥ Śrī Kṣemarājapādāḥ)

Śrikṣemarāja also wrote the following verse in this connection:

**ते नात्राधिकृताः परैः पुनरिदं पूर्णाशयैश्चर्यताम्। (स्पन्दनिर्णय)**

(Te nātrādhikṛtāḥ paraiḥ punaridam pūrṇāśayaiścarvyatām) (Spanda Nirṇaya)

The yogis considering that they are established in it, but behold it while attempting are not fit for this communication of rising Śakti Kuṇḍalinī. To perceive this state of caryā-krama, a yogī must be an ocean like broad-minded because it is an ocean where all streams in their movement become unknown and rest in without making any sound.

*to be continued*



*The study of texts shines perfectly only when there is practical knowledge at the same time. Without practical knowledge philosophical study is useless.*

*Svāmi Lakṣmanjoo Mahārāj*



## Sri Kālikā Stotram of Śivānandanātha

*Explained by Svāmi Lakṣmaṇ Joo Mahārāj*

To conquer time, goddess Kālī occupies an important place in the Kashmir's Trika School of Śaiva philosophy. Abhinavagupta identifies Kālī with Parā samvid and asserts that Parā Samvid herself is called Kālī on account of performing the five acts namely क्षेप (Kṣepa) ज्ञान (Jñāna) प्रसंख्यान (Prasamkhyāna) गति (Gati) and नाद (Nāda) in succession. According to Pāṇinī the Vetaran Sanskrit grammarian, the word Kālī is derived from the root कल् (kal) which means कलक्षेपे (Kalkṣepe) i.e. to throw out, कल गतौ ज्ञाने च (Kala gatau Jñāneca) i.e. to go or to know, कल संख्याने (Kala samkhyāne) i.e. to count, and कल शब्दे (kala śabde) i.e. to sound. Thus the word Kālī has five meanings : - (i) What lies within externally manifests that, (ii) what is so manifested that marks as identical with itself, (iii) marks out the manifested as separate from one another, (iv) manifests the manifested as related to itself much in the same manner as reflection is to the reflecting surface, (v) brings out the disappearance of all that is manifested and shines in its true original form as pure self consciousness (Nādanamātra).

Śri Śivānandanātha was the first earthly propagator of the krama system. For this reason he was called Avatāraṇātha also. Krama system attached greater importance to Śakti than to Śiva. The tradition of the krama system continued unbroken in Kashmir from the 8th Century A.D. to 12th Century A.D., as Abhinavagupta also found the teacher of this branch namely Lakṣmaṇa gupta in Kashmir. On the basis of this evidence it is admitted that Krama system is one of the oldest monistic system of Kashmir.

Śri Śivānandanātha lived in Kashmir sometime in the beginning of the 9th Century A.D. He initiated three female devotees namely Keyūravati, (825-875 A.D.) Madanikā (825-875 A.D.) and Kalyānikā (825-875 A.D.).



These three devis initiated in turn Govinda Rāja, Bhānuka and Eraka. Śrī Govinda Rāja was the guru of Somānanda the great grand guru of Abhinavagupta pāda, the most outstanding personality among the great Śiva philosophers of Kashmir. Bhānuka headed the tradition to which later belonged Ujjata and Udbhata. The third Eraka did not bother about forming a school of his own, instead he thought it better to propound the system all alone.



### अथ कालिकास्तोत्रम्

सिततरसंविदवाप्यं सदसत्कलनाविहीनमनुपाधि।

जयति जगत्त्रयरूपं नीरूपं देवि ! ते रूपम् ॥ १ ॥

*Sitatara Samvidavāpyam sadasatakalanā vihīnamanupādhi*

*Jayati Jagatatrayarūpam Nīrūpam Devi te Rūpam*

हे देवि ! जगत् त्रयरूपं सिततर संविद् अवाप्यं, सदसत्कलना विहीनं, अनुपाधि, नीरूपं ते रूपं जयति।

हे देवि - O Goddess जगत्त्रयरूपं - form of the threefold universe  
सिततरसंविद - only through very pure consciousness अवाप्यं - obtainable  
विहीनं - free from कलना - the functioning of सदसत् - being and non-  
being अनुपाधि - unaffected by any deception नीरूपं - formless रूपं - form  
ते - thy जयति - glory be to

O Goddess, glory be to thy formless form and form of the threefold Universe, obtainable only through very pure Consciousness, free from the functioning of being and non-being and unaffected by any deception.

एकमनेकाकारं प्रसृतजगद्व्याप्ति विकृतिपरिहीनम्।

जयति तवाद्वयरूपं विमलमलं चित्स्वरूपाख्यम् ॥ २ ॥

*Ekamanekākāram Prsṛita Jagadvyāpti vikṛtiparihīnam*

*Jayati tavādvayarūpam vimalamalam citsvrūpākhyam*

हे देवि ! चित् स्वरूपाख्यं विमलमलं एकं अनेकाकारं, प्रसृत जगत व्याप्ति, विकृति परिहीनम् तव अद्वयरूपं जयति।



हे देवि - O Goddess चित् स्वरूपाख्यं - the essence of consciousness  
विमलमलं - purified of all impurities परिहीनम् - free from विकृति - all  
modifications प्रसृत - flowing जगत् व्याप्ति - pervading the universe  
एकमनेकाकारं - assuming the unique aspect of plurality तव - thy अद्वयरूपं  
- unique form जयति - glory be to.

Glory be to Thy Unique form. Thou are the essence of Consciousness  
purified of all impurities, free from all modifications, flowing, pervading  
the Universe assuming the Unique aspect of plurality.

जयति तवोच्छलदन्तः स्वच्छेच्छायाः स्वविग्रहग्रहणम्।

किमपि निरुत्तरसहजस्वरूपसंवित्प्रकाशमयम्॥ ३॥

*Jayati tavocchaladantah svacchecchāyāḥ svavigrha grhaṇam  
kimapi Niruttara sahaja svarūpa samvit prakāśmayam*

हे देवि ! किमपि स्वविग्रहग्रहणम् तव इच्छाया अन्तः उच्छलत् निरुत्तर स्वच्छ सहज  
स्वरूप संवित् प्रकाशमयं जयति॥

जयति - glory be to किमपि - the inexpressible स्वविग्रह - thy own essence  
ग्रहणं - comprehension of तव इच्छायाः - which by thy will अन्तः -  
internally उच्छलत् - rises संवित्प्रकाशमयम् - full of a conscious light निरुत्तर  
- transcendant सहज - innate स्वरूप - form

Glory be to the inexpressible comprehension of Thy own essence which by  
Thy will, internally rises, full of a conscious light, transcendant and innate.

वान्त्वा समस्तकालं भूत्या झंकारघोरमूर्तिमपि।

निग्रहमस्मिन्कृत्वानुग्रहमपि कुर्वती जयसि॥ ४॥

*Vāntvā samastakālam bhūtyā jhamkāraghoramūrttimapi  
Nigrhamasminkṛtvā anugrahamapi kurvatī jayasi.*

हे देवि ! झंकारघोरमूर्तिमपि भूत्या समस्तकालं वात्वा निग्रहं अस्मिन् कृत्वा अनुग्रहं अपि  
कुर्वती जयसि॥

झंकारघोरमूर्तिमपि - after assuming your fearfull form or by expressing  
thy self in fearfull murmur भूत्या - by thy majesty समस्तकालं - time in  
its entirety वात्वा - has dried up निग्रहं - punishing (here punishing means  
ending of time, and अस्मिन् - on time कृत्वा - after doing अनुग्रहं अपि कुर्वती



- showering favours (here अनुग्रह means creating time again)  
जयसि - glory be to Thee

Thy majesty has dried up time in its entirety. Thus expresseth Thyself in a fearfull murmur punishing and showering grace ; glory be to Thee.

कालस्य कालि ! देहं विभज्य मुनिपञ्चसंख्यया भिन्नम्।  
स्वस्मिन्विराजमानं तद्रूपं कुर्वती जयसि॥ ५॥

*Kālasya kālī deham vibhajya munipañca samkhyayā bhinnam  
svasminvirājamānam tadrūpam kurvati jayasi.*

हे कालि ! कालस्य देहं विभज्य, मुनिपञ्च संख्यया भिन्नम्, स्वस्मिन् विराजमानं तद्रूपं कुर्वती, जयसि।

हे कालि - O Kālī, जयसि - Glory be to thee, विभज्य - Having fractioned, देहं - the body, कालस्य - of time, भिन्नं - Having divided, in संख्यया मुनि - seven, पञ्च - five, 7+5 = in twelve portions तद्रूपं कुर्वती - you manifest its form स्वस्मिन् विराजमानं - as established in Thy ownself.

Twelve forms of Kāla ( time are as under)

There are four functions of knower (ज्ञाता) four doings of knowledge (ज्ञान) and four functions of known (ज्ञेय) also. These four functions are सृष्टि - Creation, स्थिति - establishment, or maintenance संहार - annihilation or destruction and अनाख्य - appeasement or assumption of the indefinable state (स्वात्म साक्षात्कार)

सृष्टि स्थिति संहार अनाख्य - 4 functions of ज्ञाता (Knower)

सृष्टि स्थिति संहार अनाख्य - 4 functions of ज्ञान (Knowledge)

सृष्टि स्थिति संहार अनाख्य - 4 functions of ज्ञेय (Known)

O Kālī, Glory be to Thee. Having fractioned the body of time and having divided it in twelve portions you manifest its form as established in Thy ownself.

भैरवरूपी कालः सृजति जगत् कारणादिकीटान्तम्।  
इच्छावशेन यस्याः सा त्वं भुवनाम्बिका जयसि॥ ६॥



*Bhairavarūpī kālah srjati jagata kārṇādikīṭāntam  
icchāvaśena yasyāḥ sā tvam bhuvanāmbikā jayasi*

यस्याः इच्छावशेन भैरवरूपी कालः कारणादि कीटान्तं जगत् सृजति सा त्वं भुवनाम्बिका जयसि ॥

यस्याः - by whose, इच्छावशेन - power of will भैरवरूपी - in the shape of Bhairava, कालः - time, कारणादि - from the primordial cause or from sadāśivatattva who showers favours कीटान्तं - to the tiniest worm, जगत् - the entire world, सृजति - creates, सा - That, त्वं - Thee, भुवनाम्बिका - Mother of the Universe, जयसि - is ever victorious,

Glory be to Thee, Mother of the Universe. By Thy power of will, Time in the Shape of Bhairava, creates the entire world, from the primordial cause to the tiniest worm.

जयति शशाङ्कदिवाकरपावकधामत्रयान्तरव्यापि।

जननि ! तव किमपि विमलं स्वरूपरूपं परं धाम ॥ ७ ॥

*Jayati śaśāṅkadvākara pāvakadhāmatryāntaravyāpi  
Janani ! tava kimapi vimalam svarūparūpaṁ param dhām*

हे जननि ! तव किमपि विमलं स्वरूप रूपं परं धाम, शशाङ्क दिवाकर पावक धाम त्रयान्तर व्यापि जयति ॥

जननि - O Mother तव - Thy, किमपि - inexpressible विमलं - immaculate स्वरूप रूपं - essence परं - the supreme, धाम - abode, शशाङ्क - moon (Here it means प्रमेय = object of knowledge) दिवाकर - sun (Here it means प्रमाण = means of knowing) पावक - fire (Here it means प्रमाता = the knower) धाम त्रय - three abodes, of subject object and means of knowledge, अन्तर - from inside व्यापि - which pervades जयति - glory be to

O Mother ! glory be to Thy immaculate and inexpressible Essence, the supreme abode, which pervades from inside, the three abodes of subject, object and means of knowledge.

एकं स्वरूपरूपं प्रसरस्थितिविलयभेदतस्त्रिविधम्।

प्रत्येकमुदयसंस्थितिलयविश्रमतश्चतुर्विधं तदपि ॥ ८ ॥



इति वसुपंचकसंख्यं विधाय सहजस्वरूपमात्मीयम्।

विश्वविवर्त्तावर्त्त प्रवर्त्तकं जयति ते रूपम्॥ ९॥ (युगलकम्)

*Ekam svarūparūpam prsara sthitivilayabhedastrividham  
Pratyekamudaya samsthitilaya viśramtaścaturvidham tadapi  
iti vasupañcakasamkhyam vidhāya sahasvarūpamātmīyam  
viśva vivarttavartta pravartakam jayati te rūpam*

हे देवि ! जयति ते रूपं, विश्वविवर्त्तावर्त्त प्रवर्त्तकं, विधाय, सहजस्वरूपं आत्मीयं वसुपंचक संख्यं, तदपि एकं स्वरूप रूपं प्रसरस्थिति विलय भेदतः त्रिविधं, तदपि प्रत्येकं चतुर्विधं उदय संस्थिति लय विश्रमतः॥

हे देवि - O Goddess, जयति - glory be to ते - thy रूपं form, विश्वविवर्त्तावर्त्त प्रवर्त्तकं which proceeds revolving outwardly and inwardly विधाय - having arranged, सहजस्वरूपं आत्मीयं - thy innate essence, वसु - eight पंचकसंख्यं - five 8+5 (thirteen) according to numbers thirteen तदपि - then, एकं स्वरूप रूपं - thy unique essence, त्रिविधं - becomes threefold प्रसरस्थिति विलय भेदतः - being differentiated in प्रसर - manifestation, स्थिति - permanance and विलय - annihilation तदपि प्रत्येकं - each of these चतुर्विधं - becoming fourfold, उदय - creation संस्थिति - permanance, लय - destruction and विश्रमतः - apeasement or अवाख्य।

Glory be to Thy form which proceeds revolving outwardly and inwardly having arranged Thy innate essence according to the number "Thirteen". Then Thy Unique Essence becomes threefold, being differentiated in Prasara, Sthiti and Vilaya, each of these becoming fourfold, creation, permanance, destruction and apeasement (or anākhyā).

सदसद्विभेदसूतेर्दलनपरा कापि सहजसंवित्तिः।

उदिता त्वमेव भगवति ! जयसि जयाद्येन रूपेण॥ १०॥

*Sadasadavibhedasūterdalanaparā kāpi sahasamvittih  
uditā tvameva bhagavati jayasi jayādyena rūpeṇa*

हे भगवति ! त्वमेव उदिता, कापि सहज संवित्तिः, दलनपरा सदसद् विभेद सूतेः, जयाद्येन रूपेण जयसि॥

हे भगवति - O Bhagavati, त्वमेव - thou alone उदिता - exalted कापि -



inexpressible and सहज - innate संवितिः - consciousness दलनपरा - eager to smash, सदसद् - existence and non existence विमेद सूतेः - differentiated creation of जयसि - thou are glorified जयाद्येन रूपेण - in the shape of Jaya Vijaya etc.

O Bhagavati ! Thou alone art exalted as inexpressible and innate Consciousness, eager to smash the differentiated creation of existence and non-existence, Thou are glorified in the shape of Jaya Vijaya, etc.

जयति समस्तचराचरविचित्रविश्वप्रपंचरचनोर्मि।

अमलस्वभावजलधौ शान्तं कान्तं च ते रूपम्॥ ११॥

*Jayati samastacarācara vicitra viśvaprapaṇcaracanormi  
amalasvabhāvajaladhau śāntam kāntam ca te rūpam*

अमल स्वभाव जलधौ रचनोर्मि, विचित्र विश्व प्रपंच समस्त चराचरं ते शान्तं कान्तं चरूपं जयति॥

जयति - glory be to ते - thy शान्तं - peaceful, कान्तं - beautiful, रूपं - Essence जलधौ - in the ocean of अमल स्वभाव - the immaculate रचनोर्मि - has the velocity of a wave विचित्र विश्व प्रपंच - displaying the diversified universe, समस्त - in the totality of चराचरं - the sentient and insentient.

Glory be to Thy beautiful and peaceful Essence which in the Ocean of the immaculate Essence has the Velocity of a wave, displaying the diversified Universe in the totality of the sentient and insentient.

सहजोल्लासविकासप्रपूरिताशेषविश्वविभवैषा।

पूर्णा तवाम्ब ! मूर्तिर्जयति परानन्दसंपूर्णा॥ १२॥

*Sahajollāsa vikāsa prapūrītāśeṣa viśvavibhavaīṣā  
Pūrṇā tavāmba ! mūrtirjayati parānandasampūrṇā*

अम्ब ! सहजोल्लास विकास प्रपूरित अशेष विश्व विभवा परानन्द संपूर्णा तव एषा पूर्णा मूर्तिः जयति॥

अम्ब - O Mother जयति - glory be to एषा - this पूर्णा - perfect, मूर्तिः - Essence of (thine) परानन्द संपूर्णा - overflowing with Supreme felicity प्रपूरित - you have filled, अशेष विश्व - the whole Universe, विभवा - with glory,



विकास - by the display of thine सहजोल्लास - innate splendour

O Mother, glory be to This Perfect Essence (of Thine). Overflowing with Supreme felicity you have filled the whole Universe with glory by the display of thine innate Splendour.

कवलितसकलजगत्त्रयविकटमहाकालकवलनोद्युक्ता।

उपभुक्तभावविभवप्रभवापि कृशोदरी जयसि॥ १३॥

*Kavalita sakala jagatatrya vikatamahākālakavalanodyuktā*

*Upabhukta bhāvavibhva prabhavāpi kṛśodarī jayasi*

विकट महाकाल कवलनोद्युक्ता, कवलित सकल जगत त्रय उपभुक्त भाव विभव प्रभवापि कृशोदरी (त्वं) जयसि॥

जयसि - glory be to thee, कवलनोद्युक्ता - who is eager to swallow विकट - the horrible, महाकाल - and powerful time, कवलित - which has itself swallowed, सकल जगत त्रय - all the three worlds, उपभुक्त - swallowed विभव प्रभवापि - the whole expanse of the भाव - objective world कृशोदरी - and yet has her belly empty

Glory be to Thee who has swallowed the horrible and powerful time which has itself swallowed all the three worlds. Thou art Kṛśodarī, who has swallowed the whole expanse of the objective world and yet has her belly empty.

रूपत्रयपरिवर्जितमसमं रूपत्रयान्तरव्यापि।

अनुभवरूपमरूपं जयति परं किमपि ते रूपम्॥ १४॥

*Rūpatryaparivarjitamasamam rūpatryāntaravyāpi*

*anubhavarūpamarūpam jayati param kimapi te rūpam*

ते किमपि परं असमं रूपं, अरूपं अनुभवरूपं रूपत्रयपरिवर्जितं व्यापि रूपत्रय अन्तर जयति॥

जयति - glory be to ते - thy किमपि - inexpressible, परं - Supreme and असमं - unequal रूपं - form, अरूपं - without any form, अनुभवरूपं - whose form is experience, रूपत्रयपरिवर्जितं - though totally deprived of the three forms - प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति। व्यापि - yet pervades, अन्तर - from



inside रूपत्रय - these three forms

Glory be to Thy inexpressible, Supreme and unequal form, without any form, whose form is experience, and though totally deprived of the three forms, yet pervades these three forms from inside.

अव्ययमकुलममेयं विगलितसदसद्विवेककल्लोलम्।

जयति प्रकाशविभवस्फीतं काल्याः परं धाम ॥ १५ ॥

*Avyayamakulamameyam vigalitasadasadaviveka kallolam*

*Jayati prakāśavibhava sphītam kālyāḥ param dhāma*

अकुलं अव्ययं अमेयं काल्याः परं धाम प्रकाश विभव स्फीतं, विगलित सदसद् विवेक कल्लोलं जयति।

जयति - glory be to thy, अकुलं - undifferentiated, अव्ययं - indestructible, अमेयं - infinite or unmeasureable काल्याः - of Kālī, परं धाम - Supreme abode or state, प्रकाश विभव स्फीतं - resultant by its own light and power (प्रकाश - विमर्श) विगलित - entirely disappear सदसद् विवेक कल्लोलं - the differences between the existence and non-existence.

Glory be to Thy undifferentiated, indestructible, infinite and Supreme state of Kālī, resultant by its own light and power (Prakāśa and Vimarśa) in which the difference between the existence and non-existence entirely disappear.

ऋतुमुनिसंख्यं रूपं विभज्य पंचप्रकारमेकैकम्।

दिव्यौघमुद्गिरन्ती जयति जगत्तारिणी जननी ॥ १६ ॥

*R̥tumunisamkhyam rūpam vibhajya pañcaprakāramekaikam*

*Divyoughamudgirantī jayati jagattāriṇī jananī*

ऋतु मुनि संख्यं रूपं विभज्य एकैकं पंच प्रकारं उद्गिरन्ती दिव्यौघं जगत् तारिणी जननी जयति ॥

जयति - glory be to thee, जननी - mother जगत् तारिणी - who carries over the ocean of the world and who ऋतु - six मुनि - seven संख्यं - number = 6+7=13 = thirteen fold form विभज्य - after dividing her एकैकं - one by one, पंच प्रकारं - in a five fold way, Five fold meaning of the word Kālī explained in the



beginning may be taken as पंच प्रकार, उद्गिरन्ती - radiates, दिव्यौघं - that celestial glow.

Glory be to the Mother who carries over the ocean of the World and who, after dividing her thirteen fold form in a five-fold way, one by one, radiates that celestial glow.

भूदिग्गोखगदेवीचक्रलसज्ज्ञानविभवपरिपूर्णम्।

निरुपमविश्रान्तिमयं श्रीपीठं जयति ते रूपम्॥ १७॥

*Bhūdiggo khaga devi cakralasajjñāna vibhava paripūrṇam*

*Nirupama viśrāntimayam śrīpīṭham jayati te rūpam*

जयति ते रूपं, श्रीपीठं निरुपम विश्रान्तिमयं, ज्ञान विभव परिपूर्ण देवीचक्र लसत् - भूदिग्गोखगदेवी॥

जयति - glory be to ते - thy रूपं - form श्रीपीठं - the throne of निरुपम विश्रान्तिमयं - consisting of an incomparable peace and परिपूर्ण - filled by ज्ञान विभव - the glory of knowledge and लसत् - manifested by the चक्र - wheel of देवी - goddess (called) भूदिग्गोखगदेवी।

भू - भूचरी - Bhūcarī Śakti

दिक् - दिक्चरी - Dikcarī Śakti

गो - गोचरी - Gocarī Śakti

खग - खेचरी - Khecarī Śakti

These four circles of the divinities are only sub-species of vāmeśvarī Śakti, the Supreme Energy. These lead to the fully enlightened to the higher stages and the unenlightened to the lower and lower.

By भूचरी one becomes confined to "bhāvas" or external objects. The word भू in भूचरी means existence (world). Hence existent objects are the sphere of भूचरी Śakti. To the fully enlightened Bhūcarī energies show themselves in the form of conscious light. To others they appear as manifesting limitedness everywhere.

By दिक्चरी Śakti one is endowed with outer senses the बहिष्करण. Dikcarī is literally the Śakti that moves in Dik or space. The outer senses have to do with the consciousness of space. Hence the outer senses are said to be



the sphere of dikcarī. In the case of the fully enlightened, dikcarī lead to the manifestation of non-duality and to the duality in the case of others.

By गोचरी Śakti one is connected with his antahkarna (अन्तःकरण) the inner psychic apparatus. The अन्तःकरण is the seat of the senses and sets them in motion. Hence it is said to be the sphere of Gocarī. In the case of the fully enlightened Gocarīs produce determination with his own self and in the case of the laymen, with individualities.

By खेचरी Śakti one is connected with the Pramātā (प्रमाता) the empirical subject, the limited experient. By खेचरी one is reduced from the position of an all-knowing consciousness to that of limited experient. खेचरी is one that moves in Kha or ākāśa is here a symbol of consciousness. It is खेचरी because her sphere is 'Kha' or consciousness. In the case of the fully enlightened the Khecarīs are a means to the manifestation of non-dualities, omnipotence perfection and pervasiveness.

श्रीपीठं - It is the throne of Bhairava on which is seated the Śakti glorified by all the चक्र।

Glory be to Thy form, the throne of Sricakra consisting of an incomparable peace and filled by the glory of knowledge and manifested by the wheel of Goddesses (called) Khecarī, gocarī, dikcarī and bhūcarī.

प्रलयलयान्तरभूमौ विलसितसदसत्प्रपंचपरिहीनाम्।

देवि ! निरुत्तरतरां नौमि सदा सर्वतः प्रकटाम्॥ १८ ॥

*Pralaya layāntarbhūmou vilasitasadasataprapañca parihīnām*

*Devi ! niruttartarām noumi sadāsarvataḥ prakatām)*

हे देवि, (अहं) नौमि निरुत्तरतरां सदा, सर्वतः प्रकटाम् प्रपंच परिहीनां विलसित सदसत् प्रलययान्तरभूमौ॥

हे देवि - O Goddess, I (अहं) नौमि - sing the glory of, निरुत्तरतरां - the most Supreme of all states, सदा - always सर्वतः - everywhere प्रकटाम् - evident प्रपंच - manifestation परिहीनां - totally deprived of the विलसित - displaying itself सदसत् - by existence and non-existence प्रलययान्तरभूमौ - lies inside the appeased state of annihilation - complete destruction including the



संस्कार।

O, Goddess, I sing the glory of the most Supreme of all the states, always, everywhere, evident, totally deprived of the manifestation, displaying itself by existence and non-existence, lies inside the appeased state of annihilation (complete destruction including the Samskāra).

यादृङ् महाश्मशाने दृष्टं देव्याः स्वरूपमकुलस्थम्।  
तादृग् जगत्त्रयमिदं भवतु तवाम्ब ! प्रसादेन ॥ १९ ॥

(Yādrarñ mahāśmśāne dṛṣṭam devyāḥ svarūpamakulastham  
Tādraña jagattryamidam bhavtu tavāmba ! prasādena

अम्ब ! देव्या, स्वरूपं अकुलस्थं यादृङ् दृष्टं महाश्मशाने, तादृग् जगत् त्रयं इदं भवतु तव प्रसादेन ॥

अम्ब - O Mother, देव्या स्वरूपं - the Essence of thine, the goddess, अकुलस्थं - which lies in the undifferentiated state and यादृङ् - which is दृष्टं - perceived महाश्मशाने - in the cosmical cremation ground तादृग् - as such जगत् त्रयं - the threefold universe इदं - this भवतु - may be perceived तव प्रसादेन - by thy grace. श्मशान - Cremation ground is supreme in which all the चक्र are burnt and only remains the one perceiver. The writer शिवानन्दनाथ would like to see the undifferentiated Essence or the mother's glory not only in the cremation ground but also in world's activities.

The Essence of Thine, the Goddess which lies in the undifferentiated (state) and is perceived in the cosmical cremation ground may the threefold universe be perceived as such by Thy grace mother; Cremation ground is supreme in which all the cakras are burnt and only remains the one perceiver. Śivānadanātha would like to see the undifferentiated Essence or the mother's glory not only in samādhi, the cremation ground but also in worldly activities.

इत्थं स्वरूपस्तुतिरभ्यधायि सम्यक्समावेशदशावशेन।  
मया शिवेनास्तु शिवाय सम्यङ् ममैव विश्वस्य तु मंगलाय ॥ २० ॥

(Itham svarūpastutirabhyadhāyi samyakasamāvēśa daśāvaśēna  
mayā śivenāstu śivāya samyaña mamaiva viśvasya tu mangalāya



इत्थं स्वरूपस्तुतिः अभ्यधायि मया सम्यक् समावेशदशावशेन शिवेन ममैव शिवाय विश्वस्यतु मंगलाय सम्यङ् अस्तु।

इत्थं - thus, स्वरूपस्तुति - let the praise of the Essence अभ्यधायि मया - expressed by me, शिवेन - Śivānandanātha (name of the author) सम्यक् समावेशदशावशेन - inspired by my complete absorption in Śiva शिवाय - for the peace of mine during absorption and also for विश्वस्यतु मंगलाय - the benefit of the whole universe ममैव - which is nothing else than myself during व्युत्थान - ordinary activities.

Thus, let the praise of the Essence expressed by me, Śiva inspired by my complete absorption (in Śiva) be for the peace (of mine during absorption and also for the benefit of the whole Universe) which is nothing else than myself ; during Vyutthāna - ordinary activities.



## Kashmir Śaivism

*Dr. B. N. Pandit*

### 1. Basic Philosophic features of Kashmir Śaivism

- (i) Kashmir Śaivism is a purely Āgamic philosophy but upholds the Vedic socio-religious system of the nation and does not recommend such steps that would disturb it.
- (ii) It is open to curious devotees of Lord Śiva, the absolute God, without any consideration of caste, creed, status, sex, age, etc. but is not imparted to a person who has firm faith in any lower system.
- (iii) It aims at the attainment of both bhukti or enjoyment and mukti or liberation, side by side and does not recommend forcible suppression of any inner urges aimed at the attainment of bhukti.
- (iv) It does not prescribe any such puritanic path of monks which recommends starvation of senses and forcible repression of emotions and instincts but teaches in stead some methods of their sublimation.



- It is a philosophy that can suit both, a monk and a house-holder.
- (v) It aims at the development of the faculties of both head and heart with the help of logical knowledge and devotional attitude, both of which become one at the higher steps of Śaivayoga.
  - (vi) It accepts the principles of many other schools of thought upto certain levels of spiritual development and leads to such realms of spirituality which have been left unexplored by all such schools.
  - (vii) It is a practical philosophy of life and the principles taught in it theoretically are to be realized actually by means of devotional practices in Śaivayoga. It is perfectly evolved on both the sides of theory and practice and anything taught in it theoretically can be actually realized in practice.
  - (viii) Its principles and doctrines are not basically based either on mental calculations or on scriptural authority, but on actual realizations. Mental calculations through logical reasoning serve as aids to form mental conceptions about the realized truth and also to teach it to others.
  - (ix) Other schools of Indian thought do generally stop at some step of Suṣupti, the sound sleeping state of animation, while Kashmir Śaivism explores all the lower and higher steps of Turya, the state of self revelation, and moves even to Turyātīta, the transcendental state of absolute being.

## **2. Basic Philosophic Concepts**

So far as the metaphysics and ontology of Kashmir Śaivism are concerned, it propounds some basic principles of philosophy as given below :-

1. It asserts that the unperceptible and the basic reality is only one and that is the infinite, eternal, divinely potent, all inclusive, all perfect, absolutely independent and perfectly pure consciousness which is always aware of itself and its divine nature. Such pure and infinite consciousness appears itself as all phenomena through the power of its blissful, playful and independent will.



2. Its another fundamental principle has been termed as Paradvaita or Paramadvaya, that is, such principle of supreme monism in which there is scope for the manifestation of relative monism, monodualism and pure dualism as well. One and the same monistic entity manifests its divine powers in the form of monism as experienced in dreamless sleep, monodualism as seen in the state of pure Vidya and dualism as shining in worldly dealings. Śivayogins see only one really existent entity in all such manifestations of the divine powers of that entity. It has been termed curiously as pratyakṣadvaita, the monism that can be perceived.
3. Advaita Vedanta establishes monism and absolutism, as it accepts the absolute consciousness as the only existent reality. It explains the phenomenal existence as being due to the beginning less ignorance of beings who see only one absolute reality as God, as soul and as world. Such Vedantins do not accept Godhead as the basic nature of the absolute reality and propound thus a theory of pure absolutism. Our Vaiṣṇavas, Dvaita-Saivas and pantheists in the west propound absolutism according to which the absolute consciousness is the only existent reality and absolute theism is the essential nature of such reality. They discovered thus the seed of all phenomenal manifestation with in the theistic nature of the absolute reality. They propounded thus a theistic absolutism. The absolute reality is pure consciousness alone which is absolutely blissful by its basic nature. Its blissfulness manifests itself in playfulness and that in turn becomes manifest as dramatic scenes of creation, preservation and dissolution of the phenomenon and also of self oblivion and self recognition of the pure consciousness itself.
- (iv) while explaining the cosmogonical principles of Śaiva monism, its masters did not resort to the theories of (a) creation out of atoms, (b) transformation of cosmic energy and (c) dream like deluded appearance caused by past impressions of incorrect conceptual knowledge, but worked out such a theory of reflection in accordance with which the playful absolute reality plays the universal drama through a method of manifesting outwardly the reflections of its own divine



powers inside the mirror of the psychic lustre of its own pure consciousness. The phenomenon becomes thus manifest without causing any change or transformation in the absolute reality.

- (v) Kashmir Śaivism accepts special type of realism with regard to phenomenal existence. It teaches that every phenomenal entity shines in two aspects. Basically every thing is nothing other than the Absolute God and that is its spiritual existence in which it exists in the Absolute in the form of its divine power capable to manifest it outwardly. The manifested existence is its phenomenal existence in which it has its particular utility which does not belong to any thing like the son of a barren woman or a thing seen in a dream. Kashmir Śaivism does not thus advocate a negative attitude towards phenomenal existence, because that virtually means a sort of self deception. Such attitude has been one of the most powerful causes of the past degeneration of Indian nation. The view of Kashmir Śaivism is that of such a pragmatic realism in accordance with which every thing is taken to be real in its individual form in all mundane dealings and everything is seen as being in reality the absolute and pure consciousness having divine powers as its nature. Such a view of spiritual realism has been discussed in detail towards the close of the fifth chapter of Śivadr̥ṣṭi of Somānanda.
- (vi) So far as the principle of causation is concerned, this school of philosophy takes the absolute and divinely potent pure consciousness as the only basic cause of the manifestation of all phenomena does not resort to the acceptance of any other basic cause like Avidya, apart from the Absolute. The Principles of phenomenal causation do emerge out of Māyā which is itself a reflectionary manifestation of that divine power of supreme independence which is the basic nature of the Absolute reality. That reality appears itself as Vidya or correct knowledge as Avidya or incorrect knowledge, as relative God, as soul and as the whole mental and material existence through its reflectional dramatic play proceeding forth out of its infinite blissfulness.





## अभिलाष

देवी श्रीशारिका

न छुम मानुक म्यअ कांह अभिलाष

न छऽम संसारऽची कांह आश

अन्यज अछि नय म्यऽ आमो गाश

म्यअ नो संसारऽच्य कांह आश॥

करय सुबऽ शाम अर्चन बुऽय

करय क्षणअ क्षण अर्चन बऽय

अज्ञल नामय लेखनऽ म्यऽ आव

यिमन अछिनय म्यऽ आवो गाश॥

दऽयि हुन्द भाव सोरुय सोरचोम

च्यथ प्रकाश अन्दरिय तेल्योम

म्यऽ गरि गरि ओस यिहोय अभिलाष

म्यअनो संसारऽच्य कांह आश॥

लऽयऽन दारचन म्यऽ गाश हो आव

अन्दरी भास्योम सऽऽरि सय गाश

अज्ञानस गव मूल मुञ्ज नाश

म्यऽ नो संसारऽच्य कांह आश॥

चअ मनऽ कंऽसहंऽज न थव वुन्य आश

यि संसार नो थवान कांह बाश

यित गछ छु यम्युक सारांश

म्यऽ नो संसारऽच्य कांह आश॥

न छुम मानुक म्यअ कांह अभिलाष

न छम संसारऽची कांह आश

म्यऽ नो संसारऽच्य कांह आश

म्यऽनो संसारऽच्य कांह आश॥

\*\*\*



## कामना यतात्मा की

रूपान्तर - प्रो० मखनलाल कुकिलू

कोई नहीं सम्मान की चाह  
कोई नहीं संसार की चाह  
ज्योति हीन नयनों में मेरे  
फूटा अचानक ज्ञान प्रवाह  
मुझे ना जग की कोई चाह॥

शामसवेरे करूँ अर्चना  
हरपल हरदम करूँ वन्दना  
विधि ने सबकुछ लिखा लिलार  
नयनों में झलका स्वप्रकाश  
जग की रही न कोई आस॥

मूलसे उखड़ी द्वैतभावना  
चित् प्रकाश फैला अविराम  
हर क्षण मुझे थी इस की साध  
आज हुआ उसका आभास  
मुझे न जग की कोई आस॥

वातायनों दरारों में आज  
संवित् का छाया है राज्य  
हुआ प्रकाशमय अन्तस्तल  
मिट्टा तमस का सारा भास  
जग की रही न कोई आस॥

रखो न आस किसी की हे मन !  
जग ने रखा है किस का मान  
भव में आना फिर चल जाना  
यही वस्तुतः है सारांश  
मुझे न जग की कोई आस॥

नहीं सम्मान की कोई चाह  
नहीं भव के वैभव की चाह  
मुझे नहीं इस जग की चाह  
नहीं संसार की कोई चाह॥



## शिवसूत्र—एक समीक्षात्मक विवेचन

समीक्षाकार —डा० बलजिन्नाथ पण्डित

लिखित परम्परा के अनुसार शिवसूत्र के निर्माता स्वयं उमापतिनाथ शिव ही हैं। आ० वसुगुप्त शिव के एक अनन्य भक्त तथा उपासक थे। शिव के अपार अनुग्रह से ही उन्हें शिवसूत्र की प्राप्ति महादेव पर्वत पर हुई। श्रीनगर के पूर्व में डल नामक झील है। इस झील के पूर्वी तट पर एक ऊंची पर्वत माला खड़ी है। उसका प्राचीन नाम त्रिपुरेशाद्रि है। इसी पर्वत पर सुरेश्वरी क्षेत्र और हर्षेश्वर-शिव के स्थान हैं जहां कतिपय अनन्य भक्तजन ही जाया करते थे। इस त्रिपुरेशाद्रि की पश्चिमी ढलान को आजकल “ज़बरवन” कहते हैं। उत्तर की ओर हारवन के समीप पहुंच कर त्रिपुरेशाद्रि की पर्वतमाला समाप्त हो जाती है। वहां उसका जोड़ एक उससे भी ऊंची पर्वत शृङ्खला के साथ होता है। वहां ऊंचे ऊंचे पर्वत शिखरों की सीधी खड़ी ढलानों के बीच में एक तंग घाटी है जिसमें से एक पर्वतीय नाला बहता है। इसी घाटी के पार जो उपरोक्त ऊंची पर्वत शृङ्खला है उसमें वहां पर कई एक ऊंचे ऊंचे शिखर हैं। उनमें से एक शिखर के श्रीनगर के उत्तरीय भाग में स्थित लाल बाजार के पास पहुंचकर गोतापुर नामक प्राचीन बस्ती से यदि पूर्व दिशा की ओर दृष्टि डालते हुए देखा जाए तो उस ऊंची पर्वत शृङ्खला के कई एक शिखर दिखाई देते हैं। उनमें से एक शिखर ऐसा है कि उसकी आकृति एक गगन चुम्बी सुविशालकाय शिवलिङ्ग की जैसी दिखाई देती है। यही पर्वत महादेव गिरि कहलाता है जहां आ० वसुगुप्त को शिवसूत्र प्राप्त हुए थे।

सूत्रों की प्राप्ति के विषय में दो परम्पराएं प्रचलित हुई हैं। एक प्राचीन परम्परा है जिस के साक्षी ऐसे प्राचीन आचार्य हैं जो वसुगुप्त के ही युग के हैं। उनमें पहले आचार्य हैं भट्टकल्लट जो वसुगुप्त के अपने शिष्य हैं। दूसरे आचार्य हैं रामकण्ठ जो भट्टकल्लट के कनिष्ठ समकालीन ग्रन्थकार हैं। ये भी भट्टकल्लट की ही तरह अवन्तिवर्मा के शासन काल में विद्यमान थे। तीसरे आचार्य हैं भट्ट भास्कर जो एक ओर रामकण्ठ के युग को स्पर्श करते रहे और दूसरी ओर से सम्भवतः आ० अभिनवगुप्त के बाल्यकाल तक जीवित रहे। ये काफी दीर्घजीवी रहे। इन तीनों ग्रन्थकारों के मत में आ० वसुगुप्त को शिवसूत्र की प्राप्ति सिद्धादेश से हुई। सिद्धादेश कई प्रकार से हो सकता है। सिद्धपद उपलक्षण न्याय से देवता का भी बोधक है। तो कोई सिद्धपुरुष या सिद्धदेवता किसी को साक्षात् दर्शन देकर जो स्वयं अपनी वाणी के द्वारा उपदेश करे वह सिद्धादेश होता है। कभी सिद्धगुरु या देवता स्वप्न में दर्शन देकर उपदेश करता है या कभी सन्निधि में किसी को स्वयमेव वस्तु का अन्तःस्फुरण हो जाता है। इस प्रकार से जिस ज्ञान की या शास्त्र के जिन शब्दों की प्राप्ति कभी किसी



को हुआ करती है वह सिद्धादेश से हुई मानी जाती है और उसे वैसा ही कहा जाता है। आ० वसुगुप्त के निकटतम शिष्य भट्ट कल्लट थे। उन्होंने कहा है कि वसुगुप्त गुरु को भगवान् उमापतिनाथ शिव ने स्वप्न में दर्शन देकर समुद्र के समान विशाल और गम्भीर शिवसूत्र नामक ग्रन्थ का उपदेश किया और उसमें से उसने स्पन्द तत्त्वरूपी अमृत को खोजकर निकाला।

**दृब्धं महादेवगिरौ महेश**

**स्वप्नोपदिष्टाच्छिवसूत्रसिन्धोः।**

**स्पन्दामृतं यद् वसुगुप्तपादैः**

**श्री कल्लटस्तत् प्रकटीचकार॥ (स्पं. वृ. पृ. ४०)**

ऐसा कहते हुए उन्होंने यह भी जतलाया है कि वसुगुप्त गुरु के द्वारा खोज कर प्राप्त किए हुए उस स्पन्द सिद्धान्त को भट्ट कल्लट ने ही लोगों के सामने प्रकट किया, अर्थात् स्पन्दकारिका रूपी ग्रन्थ के द्वारा उसे जनता तक पहुंचा दिया। अस्तु, यहां सिद्ध स्वयं आदिसिद्ध भगवान् कैलासवासी शिव ही हैं जिन्हें आगमिक परिभाषा में भगवान् उमापतिनाथ कहा जाता है। उनके द्वारा स्वप्न में किया हुआ उपदेश यहां सिद्धादेश है। आ० रामकण्ठ ने इस विषय का विशेष स्पष्टीकरण न करते हुए स्पन्दकारिका के प्रसङ्ग में इस सिद्धादेश की ओर सङ्केत मात्र किया है -

**गुरोर्वसुगुप्ताभिधानस्य, साक्षात् सिद्धमुखसंक्रान्त समस्त**

**रहस्योपनिषद्भूत-स्पन्दतत्त्वामृत-निःष्यन्दस्य। (स्पं. वि. पृ. १६५)**

तीसरे प्राचीन गुरु भट्ट भास्कर ने तो स्पष्ट कहा है कि महादेव गिरिपर वसुगुप्त गुरु को शिवसूत्रों की प्राप्ति सिद्धादेश से हुई।

**श्रीमन्महादेवगिरौ वसुगुप्तगुरोः पुरा।**

**सिद्धादेशात् प्रादुरासन् शिवसूत्राणि तस्य हि॥ (शि. सू. वा. पृ. २)**

आ० वसुगुप्त का समय आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से नवम् शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक का है। भट्ट भास्कर उनकी अविच्छिन्न शिष्यपरम्परा में सातवें गुरु हैं। अतः उन्होंने जो कुछ भी कहा है, चाहे शास्त्र के इतिहास के विषय में या चाहे शास्त्र के तात्पर्य की व्याख्या के विषय में, वह सारा ज्ञान उन्हें अविच्छिन्न गुरु-उपदेश की परम्परा से प्राप्त है, अतः वह विशेष महत्व रखता है।

वसुगुप्त के समय से ढाई तीन सौ वर्षों के बीत जाने पर आ० क्षेमराज ने ग्यारहवीं



शताब्दी के मध्यकाल में शिवसूत्र की व्याख्या करते हुए यह बताया है कि वसुगुप्त गुरु को स्वप्न में यह आदेश हुआ कि “इस महादेव पर्वत पर एक बड़ी शिला पर शिवसूत्र खुदे हुए हैं। हाथ से धक्का लगाने मात्र से वह शिला खड़ी हो जाएगी और उस के जिस पार्श्व पर शिवसूत्र खुदे हुए हैं वह पार्श्व आखों के सामने आ जाएगा। आ० वसुगुप्त बड़ी बड़ी शिलाओं को हाथ से धक्का देता गया और उनमें से एक शिला सच मुच उखड़ कर खड़ी हो गई और उस पर शिवसूत्र खुदे हुए थे। उन्हें वसुगुप्त गुरु ने उतार लिया और उसके ऐसा कर चुकने पर वह शिला पुनः उसी तरह भूमि पर बैठ गई जिस तरह से पहले पड़ी थी” यह कहानी सच्चा इतिहास ही है या ढाई तीन सौ वर्षों में की गई भक्तों की कल्पना का छल है, इस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। आ० क्षेमराज के द्वारा लिखे गए इस आख्यान के अनुसार अब महादेव पर्वत की उपत्यका में स्थित एक स्थान पर एक धराशायी सुविशाल चट्टान को “शेंकर पल” अर्थात् “शङ्करोपल” या शिवजी की चट्टान कहा जाता है। क्या उस चट्टान का यह नाम वसुगुप्त गुरु के समय से ही चला आ रहा है, यह क्षेमराज के द्वारा लिखित इतिहास के आधार पर अर्वाचीन पण्डितों ने या वर्तमान शोधविद्वानों ने इस चट्टान को ऐसा नाम दे रखा है, इस विषय में भी निश्चय रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। वर्तमान युग की विशेष शक्तिशालिनी मशीनों से इस चट्टान को पुनः खड़ा करके इस की परीक्षा की तो जा सकती है, पर करे कौन। तो यह शङ्करोपल की कहानी कोई सच्ची ऐतिहासिक घटना है या भक्तों की कल्पना है, कुछ कहा नहीं जा सकता। प्राचीन आचार्यों ने शङ्करोपल की बात कही नहीं। क्षेमराज के समय तक कम से कम दो सौ वर्ष बीत गए थे। भारत में ऐसे विषयों पर कहानियों के बनने में देर नहीं लगती है। इतनी बात अवश्य ऐतिहासिक घटना है कि वसुगुप्त को स्वप्न में शिवजी ने सूत्रों का ज्ञान करा दिया। अस्तु।

इस तरह से वसुगुप्त को शिवसूत्र नामक शैव शास्त्र की प्राप्ति मात्र हुई। उन्होंने ने स्वयं इस का निर्माण नहीं किया। हां, जैसा कि भट्ट कल्लट, रामकण्ठ और भट्ट भास्कर जैसे प्राचीन आचार्यों ने और उत्पल वैष्णव ने लिखा है, वसुगुप्त गुरु ने इस शिवसूत्र रूपी समुद्र में से स्पन्दसिद्धान्तरूपी अमृत को खोज करके प्राप्त किया और उसका ठीक तरह से संग्रह किया। तदनन्तर भट्ट कल्लट को उसका उपदेश किया। आगे भट्ट भास्कर ने शिवसूत्र पर एक वार्तिक लिखा जो इस शास्त्र के परम्परा प्राप्त रहस्यों का जरा स्पष्टीकरण करता है। भट्ट भास्कर के कथन के अनुसार शिवसूत्र नामक ग्रन्थ चार खण्डों में विभक्त था। उनमें से भट्ट कल्लट ने तीन खण्डों के तात्पर्य का प्रकाशन अपने स्पन्दसूत्रों के द्वारा, अर्थात् स्पन्दकारिका के श्लोकों के द्वारा, किया और चतुर्थ खण्ड के तात्पर्य की व्याख्या ‘तत्त्वार्थचिन्तामणि’ नामक टीका के द्वारा की। इस समय शिवसूत्र के तीन ही खण्ड उपलब्ध



हो रहे हैं, भट्ट भास्कर की और क्षेमराज की व्याख्याएं तीन ही खण्डों पर मिल रही हैं। न तो वह चौथा खण्ड ही कहीं मिल रहा है और न ही उस पर लिखी गई तत्त्वार्थचिन्तामणि नामक टीका ही। उस टीका का नामोल्लेख आ० अभिनवगुप्त ने भी ईश्वरप्रत्यभिज्ञा पर लिखी गई विवृति-विमर्शिनी में किया है और साथ यह भी कहा है कि भट्ट कल्लट ने शिवसूत्रों की मधुवाहिनी नाम की एक और टीका का भी निर्माण किया था।

**तदुक्तमिति - शिवसूत्रवृत्योर्मधुवाहिनी तत्त्वार्थचिन्तामण्योर्भट्टश्रीकल्लटपादैः।**

(ई.प्र.वि.वि. १-३-२) (खं २ पृ.३०)

वह मधु वाहिनी भी आजकल कहीं मिल नहीं रही है। तत्त्वार्थ चिन्तामणि के उद्धरण क्षेमराज, उत्पल वैष्णव आदि आचार्यों के ग्रन्थों में कहीं कहीं मिल रहे हैं।

ईश्वर प्रत्यभिज्ञा की विवृति-विमर्शिनी टीका में आ० अभिनव गुप्त ने शिव के एक सूत्र को उद्धृत किया है। वह सूत्र तीन उपलब्ध खण्डों में कहीं भी नहीं मिल रहा है। अतः वह सूत्र उस चौथे खण्ड में से लिया गया होगा जिस के विषय में जानकारी भट्ट भास्कर ने दी है। विवृति विमर्शिनी में कहा है—

यत् किल शिवसूत्रम्—

“ब्रह्मपदे कमलहारीस्तदुत्थप्राणिरूपेण

सर्वत्र सर्वदा विचारयति” इत्यादि। (ई.प्र.वि.वि.खं.२.,ट.३०९) (१-४-५)

आ० क्षेमराज में भी स्पन्दसंदोह के अन्त पर दो शिवसूत्रों को इस तरह से उद्धृत किया है—

अस्ति च शिवसूत्रम्—

“सकृद्विभातोऽयमात्मा पूर्णोऽस्य न क्वाप्यप्रकाश सम्भवः।”

इति तथा—“चिद्धनात्मपूर्ण विश्वम् इत्यादिना इति। (स्प. सं. पृ. २५)

ये दो सूत्र भी शिवसूत्र के तीन उपलब्ध खण्डों में कहीं मिल नहीं रहे हैं। अतः ये तीनों ही शिवसूत्र के उस चतुर्थ खण्ड में से लिए गए होंगे जिसकी बात भट्ट भास्कर ने अपने वार्तिक में लिखी है और जिस पर भट्ट कल्लट ने तत्त्वार्थ चिन्तामणि नामक टीका लिखी थी। सम्भवतः उस चतुर्थ खण्ड में अधिक गोपनीय रहस्यों का स्पष्टीकरण किया गया हो और वह भी रहस्यमयी भाषा में किया गया हो जिससे साधारण पढ़ने पढ़ाने वालों में वह अधिक लोकप्रिय नहीं बन पाया हो और इसी कारण से लुप्त हो गया हो।



आ० वसुगुप्त ने शिवसूत्रों में से जिस स्पन्द सिद्धान्त को खोज करके निकाला और अपने शिष्यों को सिखा दिया उसका विस्तृत प्रतिपादन भट्ट कल्लट ने स्पन्द कारिका में और स्पन्दवृत्ति में किया। स्पन्द कारिका में शिवसूत्र के स्पष्ट प्रतिबिम्ब को खोज कर पाया जा सकता है। नवमीं शताब्दी के राम कण्ठ ने स्पन्दकारिका पर एक विस्तृत टीका तो लिख दी परन्तु शिवसूत्र की व्याख्या नहीं की। इस काम को आगे भट्ट भास्कर ने किया। उसने शिवसूत्र के तीन खण्डों पर ३५६ वार्तिकों का निर्माण किया। शिव सूत्रों के गुरु परम्परा से प्राप्त तात्पर्य की विस्तृत व्याख्या इस वार्तिक ग्रन्थ में ही मिलती है। परन्तु भट्ट भास्कर ने शिवसूत्रों के चतुर्थ खण्ड पर कुछ नहीं लिखा। सम्भवतः वह खण्ड अधिक रहस्यमय था, अतः उस के तात्पर्य का विशेष प्रकाशन करना उचित नहीं समझा गया। यह भट्ट भास्कर अपने आप को भट्टदिवाकर का पुत्र कहता है। भट्टदिवाकर वत्स के द्वारा लिखे विवेकांजन का उल्लेख आ० अभिनवगुप्त ने किया है। उसके एक और ग्रन्थ कक्ष्या-स्तोत्र के भी उल्लेख मिलते हैं। आ० अभिनवगुप्त ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी में कहते हैं —

यदाह भट्टदिवाकरवत्सो विवेकाञ्जने :—

प्रकाशश्चैव भावानाम्.....।

इत्यादि

..... न शापोक्त्या विलीयते।

इत्यन्तम् (ई. प्र. वि. १-१-१) इसी तरह उन्होंने विवृति-विमर्शिनी में भी कहा है—

यदाह भट्टदिवाकरवत्स :—

जातेदहप्रत्ययद्वीपभङ्गे प्राप्तैकत्वे (ध्ये) निर्मले बोधसिन्धौ।

अध्यावर्त्यैवेन्द्रियग्राममन्तर्विश्वात्मा त्वं नित्यमेकोऽवभासि॥

इति कक्ष्यास्तोत्रे (ई. प्र. वि. वि. खं. ३. पृ. ३८८)

इधर से आ० रामकण्ठ ने क्षेमराज ने, उत्पल वैष्णवने और महेश्वरानन्द ने भी कक्ष्या-स्तोत्र का उल्लेख किया है। क्षेमराज ने और महेश्वरानन्द ने कहा है—

तथा च कक्ष्यास्तोत्रे—

सर्वाः शक्तीश्चेतसादर्शनाद्याः स्वेस्वे वेद्ये यौगपद्येन विष्वक्।

क्षिप्त्वा मध्ये हाटकस्तम्भभूतास्तिष्ठन् विश्वाकार एकोऽवभासि॥

(स्पं. नि. पृ. २५ तथा म. मं. प. पृ. ८०)



यदि यह दिवाकर वत्स ही दिवाकरात्मज भट्ट भास्कर हो तो यह मानना पड़ेगा कि वह बहुत दीर्घजीवी था। एक ओर से नवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विद्यमान आचार्य रामकण्ठ उससे परिचित थे और दूसरी ओर से आ० अभिनवगुप्त ने अपने गुरुओं में किसी भास्कर का भी नाम गिना है। इस प्रसिद्ध गुरु को छोड़ कर और कोई भास्कर नाम का शैव गुरु प्रकाश में अभी तक नहीं आया। या तो वह भास्कर कोई और ही भास्कर होगा, नहीं तो यही दिवाकरपुत्र भास्कर आ० अभिनवगुप्त के बाल्यकाल तक अर्थात् दसवीं शताब्दी के तीसरे चौथे दशक तक जीवित रहा होगा। अस्तु। शिवसूत्र के गम्भीर अध्ययन में जिस ग्रन्थ से सब से अधिक सहायता मिल सकती है और जो ग्रन्थ शिवसूत्र के उन उन तात्पर्यों को जतलाता है जिन्हें वसुगुप्त आचार्य ने अपने शिष्यों को सुनाया था और सिखाया था, वह ग्रन्थ एक मात्र भट्ट भास्कर का शिवसूत्र वार्तिक ही है। यह वार्तिक काश्मीर ग्रन्थावली से प्रकाशित तो हुआ है परन्तु इस पर अभी तक किसी ने न तो कोई शोधकार्य ही किया और नही इसकी कोई विस्तृत व्याख्या ही का निर्माण किया। शिवसूत्र वार्तिक की टिप्पणी में एक और संक्षिप्त व्याख्या छपी है। इसके निर्माता कौन हैं, कुछ भी पता नहीं लगता।

आगे ग्यारहवीं शताब्दी के मध्यकाल में आ० क्षेमराज ने शिवसूत्र पर एक विमर्शिनी नाम की विस्तृत टीका का निर्माण किया। परन्तु क्षेमराज को एक तो अपने विशिष्ट वैदुष्य को जतलाने का बड़ा शौक था, दूसरे उसे नए नए अर्थों की कल्पना करने में बड़ी रुचि थी और तीसरे भट्ट कल्लट जैसे प्राचीन गुरुओं के प्रति कुछ ईर्ष्या द्वेष का जैसा भाव भी था। ये सभी बातें उसके ग्रन्थों से प्रमाणित होती हैं। सम्भवतः आ० अभिनवगुप्त को भी क्षेमराज की ऐसी प्रवृत्तियां पसन्द नहीं थीं और इसी कारण से उन्होंने अपने शिष्यों का नामोल्लेख करते हुए कहीं भी क्षेमराज का नामोल्लेख नहीं किया। तन्त्रालोक में जिस अपने चच्चेरे भाई क्षेम का उन्होंने ने उल्लेख किया है वह क्षेमगुप्त है, क्षेमराज नहीं। क्षेमराज गुप्त वंश का नहीं था अपितु उसका सम्बन्ध उस वंश से जोड़ा जा सकता है जिसमें भट्ट मूतिराज, इन्दुराज, हेलाराज, आदित्यराज, योगराज, पुण्यराज आदि शास्त्रकार प्रकट हुए। उस युग में कश्मीर में ऐसी प्रथा थी कि एक एक वंश के वंशजों के नाम का उत्तरभाग प्रायः समान हुआ करता था, जैसे जगद्धर, यशोधर रत्नधर, आदि, तथा रामकण्ठ, शङ्करकण्ठ, रत्नकण्ठ, शितिकण्ठ, भास्करकण्ठ आदि। क्षेमराज ने जो शिवसूत्र विमर्शिनी लिखी उसमें सूत्र के शब्दों की व्याख्या की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उससे अधिक प्रधानता अन्य अन्य ग्रन्थों के प्रमाण वाक्यों का उपन्यास करकर के अपनी बहुश्रुतता को जतलाने में ही दे दी। उसके शिष्य वरदराज ने आगे जो एक और शिवसूत्र वार्तिक लिखा उसीसे विमर्शिनी के अभिप्रेत तात्पर्य को समझने में काफी सहायता मिलती है। फिर क्षेमराज ने आ० अभिनवगुप्त के मालिनी



विजय वार्तिक का या परात्रिंशिका विवरण का स्पष्टीकरण करने में कोई दिलचस्पी नहीं ली जो उसे लेनी चाहिए थी, क्योंकि उसे आ० अभिनवगुप्त का शिष्य होने का बड़ा ही गर्व था। उसने तन्त्रसार जैसे लघुकाय ग्रन्थ की भी व्याख्या नहीं की। तन्त्रालोक की विस्तृत व्याख्या लिखने का काम आगे बारहवीं शताब्दी में जयरथ ने किया। आ० अभिनवगुप्त के द्वारा उद्धृत देशभाषामयी पंक्तियों का संस्कृत अनुवाद अभी तक किया ही नहीं गया। ऐसे रिक्त स्थानों की पूर्ति करना क्षेमराज का कर्तव्य बनता था जो उसने किया नहीं और उसके बदले आगम शास्त्रों और स्तोत्रों की टीकाएं लिखीं। आगमों में भी सर्वाधिक महत्त्व जिस मालिनी नामक आगम का है, उसे छुआ भी नहीं। क्षेमराज की ऐसी प्रवृत्तियों को दृष्टि में रखते हुए वर्तमान विवृति में विशेष आश्रय भट्ट भास्कर के वार्तिक का ही लिया गया। सूत्रों की व्याख्या करते हुए विशेषतया भट्ट भास्कर द्वारा प्रतिपादित तात्पर्य को ही स्पष्ट किया गया। तदनन्तर क्षेमराज के अभिप्राय पर और तत् पश्चात् अन्य अन्य सम्भव तात्पर्यों पर भी प्रकाश डाला गया। सूत्र ग्रन्थ की अनेकों व्याख्याएं की जा सकती हैं। क्योंकि सूत्रों के बहुत बार अनेक अर्थ होते हैं। सूत्र का लक्षण ही यही है कि जिसमें शब्द बहुत थोड़े हों और उनके द्वारा बहुत अर्थ को या अर्थों को जतलाया गया हो तो इस विवृति में मुख्य व्याख्या उसी को समझा जाना चाहिए जो भट्ट भास्कर के वार्तिक का अनुसरण करती है और जो प्रत्येक सूत्र की व्याख्या करते समय प्रायः सबसे पहले दी गई है। दूसरे दर्जे पर अन्य व्याख्याओं का स्थान समझा जाना चाहिए।

क्षेमराज ने स्पन्दकारिका को वसुगुप्त की ही कृति ठहराया है। परन्तु रामकण्ठ, भट्टभास्कर और उत्पल वैष्णव इसे भट्टकल्लट की कृति मानते हैं। वस्तुतः भट्ट कल्लट की शिष्य परम्परा के साथ क्षेमराज के वर्ग को कुछ विद्वेष था, जिसकी स्फुट अभिव्यञ्जना होती है जबकि आ० अभिनवगुप्त भट्ट कल्लट का नामोल्लेख अनेकों ही बार अतीव सम्मान पूर्वक करते रहे। स्पन्द कारिका की कारिकाओं की संख्या उपसंहार पद्य को मिलाकर केवल बावन है। भट्ट कल्लट की वृत्ति में बावन ही कारिकाएं हैं और रामकण्ठ की टीका में भी बावन ही है। परन्तु क्षेमराज की टीका में एक कारिका अधिक है जिसे सम्भवतः उस वर्ग के विद्वानों ने स्वयं बनाकर के जोड़ लिया था वह कारिका है—

लब्ध्वाप्यलभ्यमेतज्ज्ञानधनं हृद्गुहान्तकृतनिहितैः।

वसुगुप्तवच्छिवाय हि भवति सदा सर्वलोकस्य॥ (स्पं. नि. का. ५३)

इस कारिका में थोड़ा सा अस्फुट संकेत ऐसा है कि मानो वसुगुप्त ही स्पन्दकारिका के निर्माता हों। क्षेमराज के वर्ग की इस नीति की प्रतिक्रिया के रूप में भट्ट कल्लट के शिष्यवर्ग ने भी एक अतिरिक्त कारिका का निर्माण करके मूल ग्रन्थ में जोड़ दिया। वह कारिका उत्पल



वैष्णव की स्पन्द प्रदीपिका में है। वह यह है :-

वसुगुप्तादवाप्येदं गुरोस्तत्त्वार्थदर्शिनः।

रहस्यं श्लोकयामास सम्यक् श्री भट्टकल्लटः॥ (स्पं. प्र. का. ५३)

इसमें स्पष्ट कहा गया है कि स्पन्दकारिका के श्लोकों की रचना भट्ट कल्लट ने ही की। उत्पल वैष्णव अपने श्लोकों के द्वारा टीका के आरम्भ में स्पष्ट कहता है कि भट्ट कल्लट ने लगभग पच्चास अनुष्टुप पद्यों के द्वारा स्पन्द सिद्धान्त को एकत्र संगृहीत कर लिया।

स्पन्दकारिका के निर्माता कौन हैं, वसुगुप्त या कल्लट, इस बात पर इन सभी आचार्यों में से सब से अधिक प्रामाण्य रामकण्ठ का माना जाना चाहिए, क्योंकि एक तो वे अवन्तिवर्मा के राज्यकाल में थे ; अतः उनका आ० वसुगुप्त और भट्ट कल्लट दोनों ही के साथ परिचय रहा होगा ; दूसरे वे परम भक्त और अनन्य उपासक थे। उन की योगज अनुभूति भी बहुत गहरी थी ऐसा उनकी स्पन्दविवृत्ति से अभिव्यक्त होता है। उन्होंने वहां कारिकाकार और वृत्तिकार इन दोनों ही नामों का प्रयोग भट्ट कल्लट ही के लिए किया है। कश्मीर में इस प्रकार का निर्देश करने की प्रथा थी। आ० अभिनवगुप्त ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी में आ० उत्पलदेव को ही सूत्रकार, वृत्तिकार और टीकाकार इन तीन नामों से कहते हैं। वैसे ही वे ध्वन्यालोक लोचन में भी एक ही आनन्दवर्धन का सूत्रकार और वृत्तिकार इन दो संकेतों से उल्लेख करते हैं। स्पन्द विवृत्ति में रामकण्ठ ने एक स्थान पर यह भी कहा है—

इत्येतावत् तात्पर्यं प्रतिपादयितुं स्वयं वृत्तिकृता भट्टकल्लटेन व्याख्यातम् — सङ्कल्पमात्रेण इत्यादि। (स्प. वि. ७)

यहां “स्वयं” यह शब्द इस बात को अभिव्यक्त करता है कि जो कारिकाकार है वही स्वयं वृत्तिकार भी है। तो भट्ट कल्लट ही कारिकाकार है। फिर स्पन्दकारिका की ५२ वीं कारिका तो मूल ग्रन्थकार की ही कृति है। इस बात को क्षेमराज वर्ग भी स्वीकार करता है। उस कारिका के द्वारा ग्रन्थकार अपने गुरु को प्रणाम करते हैं। तो यहां सोचना चाहिए कि ग्रन्थकार कौन है और उसके गुरु कौन है। ग्रन्थकार और उसका गुरु दो व्यक्ति होने चाहिए। तभी तो ग्रन्थकार अपने गुरु की वाणी को प्रणाम कर सकता है। इस विषय में रामकण्ठ जैसा लगभग समकालीन गुरु यह कहता है—

निज गुरु सरस्वतीस्तवनद्वारेणाह—

अगाध संशयाम्भोधिसमुत्तरणतारिणीम्।

वन्दे विचित्रार्थ पदां चित्रां तां गुरुभारतीम्॥ (५२)



गुरुभारतीं वन्दे — गुरोर्वसुगुप्तभिधानस्य भारतीं वाचं स्तौमि.....।

(स्पं. नि. पृ. १५६)

इस तरह से यहां रामकण्ठ स्पष्ट कहते हैं कि (१) ग्रन्थकार अपने गुरु की वाणी की स्तुति करता है और (२) वह गुरु आ० वसुगुप्त है। इस से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आ० वसुगुप्त स्पन्दकारिका के निर्माता के गुरु हैं, स्वयं उसके निर्माता नहीं हैं। इस बात को समझते हुए भी अपने ही हठ पर डटे रहने के अभिप्राय से क्षेमराज ने इन शब्दों की व्याख्या ही खींचतान से अपने अभिप्राय के अनुकूल की है। वे कहते हैं कि इस कारिका के द्वारा ग्रन्थकार वसुगुप्त परावाणी रूपिणी बड़ी से भी बड़ी वाणी को प्रणाम करते हैं। परन्तु ऐसी व्याख्या करते हुए उन्होंने इस बात की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया कि परावाणी में साङ्केतिक शब्दों और अर्थों के वैचित्र्य का जराभर भी आभास नहीं होता। परावाणी में तो एक मात्र, असीम और परिपूर्ण “अहं” का ही विमर्शन होता है। अतः “विचित्रार्थपदाम्” यह विशेषण उपयुक्त नहीं बैठता है। क्षेमराज के प्रभाव से प्रभावित आजकल के शोधकार और लेखक भी इस बात की ओर और रामकण्ठ की अति विश्वसनीय साक्षी की ओर जराभर भी ध्यान नहीं देते।

वस्तुतः भट्ट कल्लट ने गुरुदेव वसुगुप्त के प्रति आभार प्रकट करते हुए कहा है कि वसुगुप्त ने शिवसूत्र रूपी समुद्र में से जिस स्पन्दरूपी अमृत का संग्रह किया, उसी का प्रकाशन श्री कल्लट ने किया।

उनके इस कथन से प्राचीन आचार्यों को भी धोखा लगता रहा और वे समझते रहे कि स्वयं वसुगुप्त ही स्पन्दकारिका के निर्माता हैं। तभी तो ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विवृति विमर्शिनी के द्वितीय खण्ड के पृष्ठ में आ० अभिनवगुप्त ने भी ऐसा ही संकेत किया है। उससे यह अनुमान किया जा सकता है कि प्राचीनकाल से ही विद्वत् समाज में प्रायः वसुगुप्त को ही कारिका का निर्माता माना जाता रहा। केवल वसुगुप्त की परम्परा के शिष्यगण ही वास्तविकता से परिचित थे। फिर उस युग के आचार्य इतिहास सम्बन्धी ऐसी बातों की ओर प्रायः ध्यान नहीं देते रहे। आ० अभिनवगुप्त ने भी तथ्य की खोज के प्रति यत्न नहीं किया ; क्योंकि उन सभी के सामने यह कोई समस्या थी ही नहीं। परन्तु क्षेमराज के समय में यह एक ज्वलन्त समस्या बन चुकी थी। तभी तो विद्वानों के दो वर्गों ने कारिका के उपरोक्त दो भिन्न भिन्न प्रकार के पद्यों का निर्माण करके उन्हें पहले से ही मूलग्रन्थ में भर रखा था। आ० क्षेमराज को जो चिढ़ भट्ट कल्लट से थी उसने इस समस्या को और अधिक प्रज्वलित कर दिया। यदि ऐसी समस्या अभिनवगुप्त के समय में विकटरूप में खड़ी हो गई होती तो उन्होंने वास्तविक तथ्य की खोज करके उसे प्रकट कर ही दिया होता। ऐसी स्थिति में हमारे



लिए रामकण्ठ जैसे प्राचीन आचार्य की साक्षी ही एक दृढ़तम प्रमाण है। अस्तु।

फिर आजकल के कोई कोई लेखक यह भी लिखते हैं कि वसुगुप्त ने कई अन्य ग्रन्थों की भी रचना की थी। उनमें वे (१) शिवसूत्रवृत्ति, (२) स्पन्दसूत्र (३) स्पन्दकारिका, (४) वासवी गीताटीका, (५) सिद्धान्तचन्द्रिका आदि ग्रन्थों को गिनते हैं। इनमें से शिवसूत्रवृत्ति क्षेमराज की शिवसूत्र विमर्शिनी का ही एक संक्षेप मात्र है जिसे पश्चात् किसी पण्डित ने भट्ट कल्लट के नामसे लिखा। स्पन्दसूत्र तो स्पन्दकारिका को ही कहा जाता रहा। क्षेमराज ने भी उन कारिकाओं को ही बहुत बार सूत्र कहा है। स्पन्दकारिका के निर्माता उपरोक्त प्रमाणों के अनुसार भट्ट कल्लट ही हैं, वसुगुप्त नहीं हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया, भट्ट कल्लट कृत स्पन्दवृत्ति के अन्त पर इस तरह से लिखा गया है—

दृब्धं महादेवगिरौ महेश-

स्वप्नोपदिष्टाच्छिवसूत्रसिन्धोः।

स्पन्दामृतं यद्वसुगुप्तपादैः

श्री कल्लटस्तत् प्रकटीचकार॥ (स्प. वृ. पृ-४०)

इस श्लोक का आश्रय लेते हुए वर्तमान युग के अनेकों शोधकारी विद्वान यह कहते हैं कि दृब्धं का अर्थ होता है—लिख डाला। दृभी ग्रन्थने इस धातु के अनुसार। तदनुसार यह माना जा सकता है कि वसुगुप्ताचार्य ने ही स्पन्दकारिका को लिखा और भट्ट कल्लट ने उस की व्याख्या की। परन्तु इस विषय में विचारणीय बातें ये भी हैं— १. स्पन्दकारिका के निर्माता भट्ट कल्लट ही हैं, इस विषय को सिद्ध करने के कई एक दृढ़तर प्रमाण ऊपर बताए गए। २. दृभी धातु का अर्थ ग्रन्थन होता तो है, परन्तु ग्रन्थन लिखने को न कहकर गूँथने को कहते हैं। पुस्तक के पत्र परस्पर गुंथे होते हैं, इसी कारण से पुस्तक का दूसरा नाम ग्रन्थ है, लिखे जाने के कारण से नहीं। ३. शिवसूत्रसिन्धोः में पञ्चमी विभक्ति का तात्पर्य लिखने के अर्थ से मेल नहीं खाता। ४. स्पन्दामृत से तात्पर्य है स्पन्द सिद्धान्त और उस सिद्धान्त को दृष्टि में रखते हुए की जाने वाली स्पन्द-साक्षात्कार-मयी साधना। उसी दृष्टि से उसे अमृत कहा गया है। अपने स्पन्दात्मक शिवभाव की प्रत्यभिज्ञा तो परम आनन्दमयी होती हुई अमृत ही है। तो भट्ट कल्लट के इस वाक्य का यही अर्थ हो सकता है कि आ० वसुगुप्त ने शिवसूत्र रूपी समुद्र का मन्थन करके उसमें से स्पन्दसिद्धान्त और स्पन्दसाधना रूपी अमृत को खोज कर के निकाला और साथ ही उसे समेट कर मानो उसे गूँथ लिया, अर्थात् उसके अङ्ग प्रत्यङ्गों को परस्पर समन्वय द्वारा एक सर्वाङ्ग सम्पूर्ण सिद्धान्त का रूप दिया।



तदनन्तर उसी संवारे हुए सिद्धान्त को स्पन्दकारिका के श्लोकों के द्वारा भट्टकल्लट ने जनता के सामने प्रस्तुत करते हुए उसे प्रकट कर दिया, अस्तु॥

शेष अगले अंक में



## Abhinavagupta Solves the Riddle

Is a thing by its nature pure holy (Śuddha) or impure unholy (Aśuddha) ? Or putting it in ethical terms, is an action by its nature right or wrong ?

Abhinavagupta solves it as follows :

Purity or impurity (śuddhi or aśuddhi) is not the essential quality or nature of any object, because in that case the purification of a thing of which the scriptures talk would be impossible as the essential nature can not change, but if it changes it is not essential. Purity or impurity have therefore to be admitted to be the ideas of a particular subject which are firmly associated with a thing. It is why what is pure to one person is not so to another. For the idea of purity of one thing and impurity of another is inspired by the scripture in which an individual has faith. According to Śaiva conception whatever is recognised to be one with the samvit is pure and what is not so recognised is impure. Hence to those who look upon the whole universe as identical with self, the distinction between pure and impure does not exist.

T. A. (Comm.) III

